अम्बपाली

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

भारतीय नटराज

भाई पृथ्वीराज कपूर

और उनकी अन्यतम कलाकृति

पृथ्वी थियेटर्स

को सप्रेम

भारत-सरकार द्वारा संस्थापित 'संगीत-नाट्य-अकादमी' की ओर से स्वतन्त्र भारत में पहली बार आयोजित 'राष्ट्रीय नाटक महोत्सव' में अभिनीत होने के लिए हिन्दी के जो नाटक चुने गए, 'अम्बपाली' को उनमें स्थान मिला। इस गौरव-प्रदान के लिए राष्ट्रीय-नाटक-महोत्सव के सूत्रधारों को हार्दिक धन्यवाद!

मेरी अम्बपाली

अपनी यह पहली नाट्य-कृति हिन्दी-पाठकों के निकट रखते हुए मुझे संकोच नहीं हो रहा है; क्योंकि पुस्तकाकार प्रकाशन के पूर्व ही इसे इतनी प्रशंसा और प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी है कि स्वयं आश्चर्यचकित हूं।

अम्बपाली बौद्ध-युग की एक अतिप्रसिद्ध नारी है। उसको लेकर भारतीय भाषाओं में कितनी ही रचनाएं हुई हैं—काव्य, कहानी, नाटक और उपन्यास के रूप में। किन्तु, मैंने इस रचना द्वारा अपना नाम सात सवारों में लिखाने की कोशिश नहीं की है।

क्योंकि, यह मेरी आदत में शामिल नहीं है। अपने पैरों का वजन और वकत मुझे मालूम है, लेकिन, किसी के पदचिह्न-मात्र पर चलना मैं कलाकार की मौत मानता हूं।

बचपन में ही मेरा झुकाव नाटक-रचना की ओर हुआ था। हाई स्कूल के चौथे या तीसरे वर्ग में ही मैंने एक नाटक लिखा था, लंगोटिया यारों को सुनाया था; उन्हें पसन्द आया, उसके खेलने का आयोजन भी हुआ और एक मारवाड़ी दोस्त ने उसे छपवाने के लिए चार रुपये का चन्दा भी उगाहा था।

लेकिन, बाद में मैं कवि बन गया, तब लेखक हुआ, फिर पत्रकार बन कर रह गया। किन्तु, हजारीबाग सेण्ट्रल जेल के निश्चिन्त एकान्त में जब एक दिन बादल घिर आए कि अचानक मेरा नाटककार जग उठा।

और, अपने लिए पात्र के रूप में अम्बपाली का चुनाव भी मेरे लिए स्वाभाविक ही था। जहां अम्बपाली का जन्म हुआ था, उसी भूमि ने मुझे भी उत्पन्न किया है और एक पुरातत्वज्ञ ने तो यहां तक कह डाला है कि वृज्जियों के आठ कुलों में शायद मेरा वंश है, जिनकी संघशक्ति ने वैशाली को महानता और अमरता प्रदान की थी।

किन्तु, क्या मेरी अम्बपाली पच्चीस सौ साल पहले रची गई विधाता की अम्बपाली का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकती है ?

विधाता की किसी कृति को जब कलाकार अपनी कलाकृति के लिए चुनता है, तब उसके कलात्मक रूप देने की प्रक्रिया में एक अजीब बात हो जाती है। विधाता की कृति धीरे-धीरे विलीन होने लगती है और समाप्त करते-न-करते कलाकार आश्चर्य से देखता है, एक दूसरी ही नवीन आकृति उसके सामने आ खड़ी है !

और, यह कौन कहे कि सुन्दर कृति किसकी—विधाता की या कलाकार की ? वह, जो पचास या सौ साल जीकर धूल में मिल गई, विधाता की वह शकुन्तला अच्छी, या दो हजार साल के बाद जो जीवित है, कालिदास की वह शकुन्तला अच्छी !

पुरातत्वज्ञ मेरी इस अम्बपाली को इतिहास के पन्नों में अंकित अम्बपाली से मिलावें, घटनाओं के तारतम्य में कुछ त्रुटियां पावें और मुझे गालियां भी दे लें; किन्तु मैं कहूं, मुझे तो मेरी अम्बपाली ही सच्ची अम्बपाली प्रतीत हुई है। सच्ची और अच्छी भी; क्योंकि सत्य ही सुन्दर और सुन्दर ही सत्य है न !

अब भी वे दिन भूले नहीं हैं, जब हजारीबाग सेण्ट्रल जेल के वार्ड नं० १ के सामने, सघन पत्तियों वाली एक आम्र-विटपी के तने से उठ कर मैं अपनी अम्बपाली की रचना किया करता था—सामने फूलों से लदे मोतिये और गुलाब के झाड़ थे, ऊपर आसमान पर बादलों की घुड़दौड़ होती थी और इधर मेरी लेखनी कागज पर घुड़दौड़ करती थी। दिन-भर मैं जो कुछ रचता, शाम को मित्रों को सोल्लास सुनाता। उस पाषाणपुरी में मेरी इस कुसुम-तनया की अलौकिक चरितावली उनके शुष्क हृदयों को हरा-भरा और रंगीन बना देती और वे मुझ पर और मेरी इस कृति पर प्रशंसा की पुष्प-वृष्टि करने लगते। बेचारे विधाता को ऐतिहासिक अम्बपाली की सृष्टि करने में ऐसा सुन्दर वातावरण और ऐसा निराला प्रोत्साहन कहां प्राप्त हुआ होगा ?

अपनी अम्बपाली की सुन्दरता और पूर्णता पर मुझे पूर्णतः सन्तोष है; अम्बपाली और वैशाली की आत्मा के चित्रण में, अपने जानते, मैंने कोई

त्रुटि नहीं आने दी है। हां, प्रथम नाट्य-रचना होने के कारण इसमें टेकनिक की त्रुटियां हो सकती हैं—जिनके लिए क्षमा मांगने की जरूरत भी मैं महसूस नहीं करता; क्योंकि मेरे सहकर्मियों ने क्षमा-प्रार्थना को भी एक बाजारू माल बना रखा है।

आशीर्वाद दीजिए, कुछ ऐसी ही नाट्य-कृतियां मैं आपके सामने उपस्थित करने में समर्थ हो सकूं।

बेनीपुर
उमड़ते सावन की
एक बरसाती अधरतिया
1947

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

पुनश्च :

इस नये संस्करण में एक छोटा-सा परिवर्द्धन, कुल पांच पंक्तियों का किया गया है। इसकी आवश्यकता थी। अजातशत्रु से मिलने पर जब बात बहुत बढ़ रही थी, अम्बपाली ने उसे एक छोटी-सी तस्वीर दिखाई। वह तस्वीर किसकी थी? उस समय का साहित्य कहता है, अम्बपाली के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अजातशत्रु का पिता बिम्बसार भी उसकी रंगशाला में चुप-चोरी प्रणय की भीख लेने गया था? पिता की इस तस्वीर को देख कर भी क्या अजातशत्रु वहां टिक सकता था?

1954

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

पात्र-सूची

नारी-पात्र

अम्बपाली : वैशाली की राजनर्त्तकी
मधूलिका : अम्बपाली की सहेली
सुमना : अम्बपाली की मौसी
पुष्पगन्धा : वैशाली की भूतपूर्व राजनर्त्तकी
चयनिका : अम्बपाली की परिचारिका

पुरुष-पात्र

अरुणध्वज : अम्बपाली का ग्रामीण प्रेमी
भगवान बुद्ध : संसार प्रसिद्ध धर्म प्रचारक
आनन्द : बुद्ध के प्रधान शिष्य
चेतक : वैशाली के महामात्य
अजातशत्रु : मगध के सम्राट्
सुनीध : मगध-सम्राट् का सखा-मन्त्री
वस्सकार : मगध का प्रधान-मन्त्री
अश्वसेन : वैशाली का नागरिक
वसुबन्धु : वैशाली का नागरिक

अम्बपाली

पहला अंक

एक

[एक विस्तृत सघन अमराई—आम की डाल-डाल मंजरियों से लदीं, झुकीं; भौंरे जिन पर गुंजार कर रहे, वासन्ती हवा जिनसे खेलवाड़ कर रही—आम के पेड़ों के बीच की जमीन में सरसों की फूली हुई क्यारियां—वृक्षों से लिपटी लताओं से जहां-तहां बन गई कुंजें—सूरज की किरणों से अभी सोना नहीं गया है—मंजरियों, पत्तों, फूलों पर की ओस की बूंदें उसके स्पर्श से चमचम कर रहीं—चिड़ियों की चहचह में दूर से सुनाई पड़नेवाली कोयल की कुहू—

अमराई का मध्य—एक फैला हुआ आम का वृक्ष—उसकी एक मोटी डाल से एक झूला लटक रहा—जहां-तहां कमाचियों के बने पिंजड़े झूल रहे—

एक किशोरी झूलनेवाले वृक्ष की ओर आती दिखाई पड़ती है—कमर में प्राचीन ढंग का हरा परिधान, जो मुश्किल से घुटनों के नीचे पहुंचता है—कमर के ऊपर के हिस्से में सिर्फ स्तनों को ढकने वाली पतली कंचुकी, हरे रंग की ही—गले में फूलों की माला, जो कमर तक लटक रही—बालों के जूड़े में सरसों के फूल खोंसे—सुन्दर सुडौल गोरी बांहों में सिर्फ फूलों के ही कंगन—हाथ में आम की मंजरियों का गुच्छा—

किशोरी उस पेड़ के नजदीक पहुंचती है—झुकी डालों की मंजरियों को चूमती है—उसे देखते ही पिंजड़ों के पंछी चहचहा उठते हैं—वह उन पिंजरबद्ध पंछियों के निकट जाकर उन्हें दुलारती है—मुंह से सीटी देती

हुई एक श्यामा के पिंजड़े को लेती झूले के नजदीक आती है—धीरे-धीरे झूलती हुई, श्यामा की ओर देखती, यह गाती है—

मेरी श्यामा ने बंशी फूंकी,
कोइलिया क्यों कूकी ?
कुहरे की झीनी चदरिया में सोई
धरती थी ऊंघ रही सुधि खोई
किसने अचानक उस गुदगुदाया
चारों तरफ छा गई जैसे माया
सरसों की क्यारियां फूलीं
आमों में मंजरियां झूलीं,
भौंरों की भामिनियां भूलीं
पुरवाई मस्ती में यों सनसनाई—
कि भूली हुई बात फिर याद आई, कलेजे में हूकी,
कोइलिया कूकी।
मेरी श्यामा ने बंशी फूंकी।

जब किशोरी गा रही, उसी रंगरूप, वेशभूषा की दूसरी किशोरी बगल से आती है—पहली किशोरी गाने की तन्मयता में उसे नहीं देखती—वह धीरे-धीरे दबे पांव आम के पेड़ के नजदीक आती और उसकी डाल पर चढ़ जाती है—ज्योंही गाना खत्म होता है, वह कोयल की बोली का अनुकरण कर कुहू-कुहू बोल उठती है—संगीतमग्ना किशोरी चकित होकर पेड़ की ओर देखती है—फिर झूले से उठकर आगे बढ़ती है—सहसा डाल की ओर देखकर हंस पड़ती है—]

पहली किशोरी : ओहो, मधु ! उतर पगली ! वही मैं कह रही थी, यह कोयल तो हो नहीं सकती। उतर, उतरती है या···

दूसरी किशोरी : या ! क्या ? गा, गा—'मेरी श्यामा ने बंशी'···वाह री तेरी श्यामा !

पहली किशोरी : उतरती है, या ढेले फेंकूं ?

दूसरी किशोरी : ढेले उन पर फेंक, जिनकी 'भूली हुई बात फिर याद

आई, कलेजे में हूकी !' वह ढेले बर्दाश्त करेंगे तेरे, मैं क्यों ?"

पहली किशोरी : नहीं उतरती ?

दूसरी किशोरी : नहीं उतरती !

[पहली किशोरी गुस्से में इधर-उधर ढेले ढूंढती है—फिर हाथ की मंजरियों को ही फेंकने लगती है—निशाना चूकता जाता है—ऊपर की किशोरी ठहाके लगाती जाती है—अन्त में जब वह डाल पर चढ़ने का उपक्रम करती है, दूसरी किशोरी डाल से दोल मारकर जमीन पर आ जाती है और झूले पर जाकर झूलती हुई गाती है—'कोइलिया क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने !' तब तक पहली किशोरी भी उतर आती और झूले के नजदीक पहुचती है—]

पहली किशोरी : क्यों री, तू मुझे चिढ़ाती क्यों है ?

दूसरी किशोरी : (बिना जवाब दिए वह गाती जाती है)—'कोइलिया क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने वंशी फूंकी…'

पहली किशोरी : तू नहीं चुप होती !

दूसरी किशोरी : (गाती जाती है) 'क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने…'

पहली किशोरी : (चिढ़कर उसे झकझोरती हुई) श्यामा की सास !

दूसरी किशोरी : (नाक-भौं चढ़ाती हुई) कोयल की सौत !

[दोनों, एक दूसरी को आंखें गड़ा-गड़ाकर देखती हैं—देखते-ही-देखते दोनों ठठाकर हंस पड़तीं और एक दूसरी से लिपट जाती हैं—लिपट जातीं, एक दूसरी को चूमतीं—फिर दोनों झूले पर बैठ, पैर से धीरे-धीरे पेंग देती, परस्पर आहिस्ता-आहिस्ता बातें करती हैं—

इनमें पहली किशोरी है अम्बपाली—दूसरी उसकी सखी मधूलिका, और यह है आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले की बात—आज जहां मुजफ्फरपुर का जिला है, वहां उत्तर-बिहार में तब वृज्जियों का प्रजातन्त्र था, जो संघराज्य कहलाता था—ये दोनों वृज्जि-कुमारियां हैं—]

मधूलिका : अम्बे, आज भोर-भोर तूने कुछ देखा है क्या ? या रात में कोई सपना देखा था ?

अम्बपाली : तेरा मतलब ?

मधूलिका : मतलब है, तेरे इस गाने से।

अम्बपाली : क्या बिना सपने देखे आदमी कुछ नहीं गा सकता ? और, सच पूछ, तो ऐसी कोई भी रात होती है जिसमें आदमी सपने न देखे या ऐसी कोई भोर आती है, जिसमें आदमी कोई रूप न देख पाए ?

मधूलिका : लेकिन सपने-सपने में फर्क होता है और फर्क होता है रूप-रूप में, अम्बे ! एक सपना होता है, जिसमें आदमी डरकर आंखें खोल देता है और एक सपना ऐसा होता है, जिसमें जग जाने के बाद भी आदमी आंखें मूंद लेता है कि एक बार फिर उसकी कड़ियां जोड़ सके ! समझी ?

अम्बपाली : हूं।

मधूलिका : यों ही एक रूप होता है, जिसको देखकर आंखें मुड़ जाती या मुंद जाती हैं और दूसरा रूप होता है, जिस पर नजर पड़ते ही पलकें और बरौनियां काम करना छोड़ देती हैं, नजरों में टकटकी बंध जाती है और दिमाग चिल्लाता है, आह, ये आंखें इतनी छोटी क्यों हुईं ? बड़ी होतीं, इन्हीं में उसे रख लेता ! समझी ?

अम्बपाली : हूं।

मधूलिका : हूं। हूं क्या ?

अम्बपाली : यही कि रूप-रूप में फर्क होता है और फर्क होता है सपने-सपने में भी यही न ? लेकिन; एक बात कहूं मधु, मुझे याद नहीं कि कभी बुरे सपने भी देखे होऊं; और मेरी आंखों ने जिसे देखा, सुन्दर ही पाया !

मधूलिका : (आश्चर्यमयी मुद्रा से) अच्छा !

अम्बपाली : हां, हां, सच कहती हूं, सखि ! न जाने क्या बात है, या तो कुरूप चीजें मेरी आंखों के सामने आती ही नहीं या मेरी नजरें उनका प्रतिबिम्ब ग्रहण नहीं करतीं···

मधूलिका : (बात काटकर किंचित मुस्कान से) या तेरी नजर पड़ते ही कुरूप भी रूपवान् हो उठते हैं ?

अम्बपाली : दिल्लगी की बात नहीं है, मधु ! मैंने आज तक दुनिया में सिर्फ सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य देखा है—निर्जीव प्रकृति से लेकर प्राणवान् प्राणी तक ! और सपने ? उनकी बात मत पूछ। मधु, आदमी जागना क्यों

चाहता है ? सोये रहो, सपने देखते रहो; क्या इससे भी कोई दूसरी अधिक सुन्दर चीज़ हो सकती है ? जागरण ! (उपेक्षा के शब्दों में) *जागरण आदमी का वरदान है या अभिशाप, रे !*

मधूलिका : आज तुझे यह क्या हो गया है। तू किस सपने के लोक में है ?

अम्बपाली : सपने का लोक ! आह, मैं हमेशा उसी में रह पाती, मेरी मधु ! जब बच्ची थी, सपने में देखती—परियों का देश, मणियों का द्वीप, उड़नखटोले की सैर ! और आजकल ? ज्योंही आखें लगीं कि मैं पहुंच गई उस सुनहली घाटी में, जहां इन्द्रधनुष का मेला लगा रहता है, जहां जवानी तितलियों के रूप में उड़ती रहती है; या उस देवलोक में, जहां सुनहले पंखों वाले देवकुमार नीलम के पंखोंवाली अप्सराओं की अगल-बगल, आगे-पीछे मंडराते फिरते हैं, या कम-से-कम उस रूपदेश की राज-सभा में, जहां कलंगीवाले राजकुमारों की भरमार है—जहा नृत्य है, संगीत है, और है··· (अचानक सिहर उठती है) मधु, मधु, तू क्या ऐसे सपने नही देखती ?

मधूलिका : *मैं देखती या नहीं देखती, बात मत बहला। बता तूने रात* भी क्या ऐसा ही सपना देखा है ?

अम्बपाली : रात जो देखा, उसकी मत पूछ ! उफ् ! बिलकुल अद्भुत, अपूर्व ! उसकी याद से ही शर्म आती है, सखि !

मधूलिका : शर्म ! सपने मे शर्म की कौन-सी बात है री !

अम्बपाली : नहीं, मधु, जिद न कर। सचमुच उसकी याद से ही मैं शर्म से गड़ने लगती हूं।

मधूलिका : (व्यंग्य के शब्दों में) समझी, समझी, तभी तो भोर-भोर यह गीत ! आखिर अचानक आकर उसने तुझे गुदगुदा ही दिया। 'किसने अचानक···गुदगुदाया···' (गाने का व्यंग्य करती है)

अम्बपाली : लेकिन, तेरा यह निशाना ठीक नही बैठा मधु ! यह वह बात नहीं जिसकी तू कल्पना भी कर सके।

मधूलिका : मेरी कल्पना की रानी ! मैं, और वहा तक पहुंच सकू ? खैर, बता, तूने क्या देखा ?

अम्बपाली : तेरी जिद; अच्छा सुन। (वह चकित नेत्रों से इधर-उधर देखती है कि कोई दूसरा तो नहीं है और फिर धीमे स्वर में कहने लगती

हूं) रात देखा, कहीं अजीब देश में पहुंच गई हूं, जहां चारो ओर फूल-ही-फूल हैं। *जिन्हें हम गूलर-पाकर-पीपल कहते हैं, उनमें भी फूल लगे हैं—*चम्पा के, गुलाब के, पारिजात के। जमीन पर घास-फूस की जगह फूलों की पंखड़ियां बिछी हैं और धूल की जगह पीत पराग बिखरा है। हवा में अनहद संगीत—वातावरण में अजीब रंगामेजी। सामने एक तालाब देखा, जिसमे कमल के सहस्र-सहस्र फूल खिल रहे—लाल, श्वेत, पीत, नील। और, दर्पणोपम निर्मल नील जल! *मुझे गरमी महसूस हो रही थी।* सोचा, क्यों न तालाब में नहा लूं? इधर-उधर देखा, कोई नहीं। मैंने झट कचुकी उतार दी, बाह्य परिधान खोलकर रख दिया। दौड़कर किनारे पहुंची। जल में कूदने के लिए झांका, तो अपना सम्पूर्ण प्रतिविम्ब देखा! देखा! (सिहरती हुई) अपना ही प्रतिबिम्ब! लेकिन, उसे देखते ही मधु, *नसों में खून के एक अजीब ज्वार का अनुभव हुआ और आधी बेहोशी में* ही अपने को पानी में फेंक दिया!

मधूलिका : (विस्मय में) अजीब सपना!

अम्बपाली : उसका अनोखापन तो अब आता है, रे। पानी में धंसकर मैं तैरने लगी और बढ़ी एक नील कमल की ओर। किन्तु यह क्या? यह तो कलंगीवाला राजकुमार है और मुझे अपनी ओर आते देख वह मुस्करा रहा है, मैं चकित हुई। दूसरे कमलों की ओर देखा—वैसे ही कलंगीवाले राजकुमार, हजार-हजार! और, सब-के-सब मेरी ओर देखकर सिर्फ मुस्करा नहीं रहे, बल्कि ठठा-ठठाकर हंस रहे। मैं अर्धनग्न—उफ् क्या करूं, कहां जाऊं कैसे बाहर होऊं? इससे तो डूब मरना अच्छा। डूब मरूं—मरूं—इसी उम्र में! तो? डुबकी मारकर शर्म छिपानी चाही—एक डुबकी, दूसरी डुबकी, तीसरी डुबकी में मालूम हुआ, सास घुट रही है। अच्छा हुआ, नींद टूट गई। जगी तो पाया, पसीने-पसीने थी।

मधूलिका : निस्सन्देह विचित्र सपना देखा है, तूने। लेकिन, समझती है, इसके मानी क्या है?

अम्बपाली : क्या समझूं? एक दिन का सपना हो तो, कुछ समझा जाए। जिसकी जिन्दगी ही सपने की है, वह किस-किस का मानी लगाए!

मधूलिका : लेकिन, इस सपने का तो खास महत्व है। वसन्त के प्रथम

दिन का यह सपना साधारण सपनों में नहीं है।

अम्बपाली : तो क्या मानी है इसके ?

मधूलिका : वही, जो उस दिन ज्योतिषीजी ने तेरे हाथ की रेखाएं देखकर कहा था—"तेरे चरणों पर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट लोटेंगे।"

अम्बपाली : चुप, चुप ! मैं तो उसकी कल्पना से ही सिहर उठती हूं, मधु ! 'हजार-हजार राजकुमार !' उफ, वह भी कोई जिन्दगी होगी। मेरा तो अकेला···

मधूलिका : 'मेरा तो अकेला अरुणध्वज !' क्यों, यही न कहना चाहती थी ? (रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कराती है)

[एक कुंज की ओर से कुछ शब्द, किसी के आने की पदचाप-सी सुनाई पड़ती है—दोनों सखियां चौंककर उस ओर देखती हैं—पाती हैं, एक नौजवान चला आ रहा है—यह अरुणध्वज है—अंग-अंग गठा हुआ, सुपुष्ट, सुविकसित—कटि से घुटने तक का पीत वस्त्र—पीठ पर तूणीर, कन्धे से धनुष लटक रहा, हाथ में एक बाण—सिर पर घुंघराले लम्बे बाल, जिन पर पीले पाटम्बर की पट्टी, जिससे कुछ फूल कलंगी की तरह झूल रहे—यौवन की साक्षात प्रतिमा-सा दिखाई पड़ता है—

उसे देखते ही अम्बपाली सिटपिट—मधूलिका उछल पड़ती है, उसे मुंह मांगा वरदान मिला हो—'अरुण, खूब आए, भले आए, अच्छे आए—' कहती दौड़कर आगे बढ़ती है और उसे झूले के नजदीक ले आती है—अरुण चकित-विस्मित उसका मुंह देखता है—]

मधूलिका : (अरुण से) अच्छा, अब तुम दोनों इस पर बैठो (झूले की ओर इशारा करती है) मैं जरा झुलाऊंगी। (अम्बपाली से) वह कौन-सा गाना है, अम्बे, हा-हां (सुर में) 'मेरी श्यामा ने वंशी फूकी, कोइलिया क्यों कूकी !' (अपने चेहरे की ओर आश्चर्य से घूरते हुए अरुण से) तुम बैठते क्यों नहीं जी ?

अरुणध्वज : यह क्या शरारत सूझी है तुझे, मधु !

मधूलिका : हां, मेरी शरारत ही तो ! यह (अम्बपाली की ओर

मुखातिब होती) यहां अकेली, वसन्त के इस प्रथम प्रभात में 'भूली हुई बात फिर याद आई, कलेजे मे हूकी !' गाया करें और आप चुपके-चुपके, होले-होले, भूलते-भटकते, इस कुंज में आ पहुंचे—भला मैं कौन होती हूं, जो बीच में दाल-भात में मूसरचन्द बन बैठी ! जरूर मेरी शरारत है यह ! अच्छा महाशयजी, प्रणाम ! (अम्बपाली से) देवीजी, नमस्ते ! उभयमूर्ति इस अपराधिनी को क्षमा प्रदान कीजिए, मैं चली !

[बड़ी विनम्रता से दोनों को झुक-झुककर अभिवादन करती मधूलिका चलने का उपक्रम करती है—जब वह दो-तीन कदम आगे बढ़ती है, अम्बपाली उसका हाथ पकड़ लेती है—]

अम्बपाली : शैतानी मत कर, ठहर !
मधूलिका : पहले शरारत, अब शैतानी ! राजा से सात गज बढ़कर रानी ! (बड़ी विद्रूपता से उंगली अपने मुंह पर ले जाती है।)
अरुणध्वज : अच्छा, माई ! तुम दोनों आपस में पीछे सुलझा लेना। मैं एक जरूरी बात कहने आया हूं।
मधूलिका : किसी जरूरी बात से तो आप आए ही हैं। बिना जरूरत के आप यहा क्यों आते भला ? कहां हमारा यह आनन्दग्राम, कहां आपकी मधुगोष्ठी; बीच में वेगवती की धारा। तो भी आप रोज-रोज बिला नागा, दोनों जून, जो यहा पैर थकाते, तकलीफ उठाते, पहुंच जाया करते हैं, सो क्या बिना किसी जरूरी बात के ही ! (जीभ काटती हुई) राम ! राम !
अरुणध्वज : अरी, तू दिन-दिन वाचाल होती जाती है ! खैर बोलो, तुम लोग चलती हो या नहीं ?
मधूलिका : हां-हां, बोल अम्बे, तू जाती है या नहीं ? जा, जा ! (अम्बा को खोदती है)
अम्बपाली : मैं पीटूंगी तुझे मधु। (अरुण से) चलें ? कहां ?
मधूलिका : (सुर में) 'कुंजकुटीरे, यमुनातीरे !' (अलग हटकर खिल-खिला पड़ती है)
अरुणध्वज : (बनावटी गुस्से में) फिर वही नटखटपन ! (अम्बपाली से) वैशाली चलना है ?

अम्बपाली : वैशाली ? वैशाली में क्या है ?
अरुणध्वज : फाल्गुनी उत्सव ! हम वृज्जियों का प्यारा राष्ट्रीय त्योहार ! किस वृज्जिकिशोरी-वृज्जिकुमार के मानस में इस उत्सव के नाम से ही भावनाएं तरंग-पर-तरंग नहीं लेने लगती ! और, इस साल तो उसका विशेष महत्त्व है। वैशाली की राजनर्त्तकी देवी पुष्पगन्धा अब अवकाश ग्रहण करने जा रही हैं, उनकी जगह इस साल नई राजनर्त्तकी का चुनाव···

[मधूलिका चुनाव का नाम सुनते ही इन दोनों के नजदीक आती और आश्चर्य-भरे स्वर में कहती है—]

मधूलिका : चुनाव ! इसी साल !
अरुणध्वज : हां, हां; इसी साल ! देखें, वह कौन-सी सौभाग्यशालिनी वृज्जिकुमारी होती है, जिसके चरणों पर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट······
अम्बपाली : (अचानक चिल्ला उठती है) ऐं ! ऐं !
अरुणध्वज : क्यों ? यों सहम क्यों उठी ?
मधूलिका : मैं कहूं, क्यों ?
अम्बपाली : मधु, मधु ! (हाथों से मना करती है)
अरुणध्वज : क्या बात है मधु !
मधूलिका : (विनोद-भाव से अम्बपाली को देखती) क्यों ?
अम्बपाली : (गुस्सा दिखाती) तू चुप रहती है, या···
मधूलिका : या तू पीट देगी, यही न ! तो, सुनिए, अरुणजी, उस दिन ज्योतिषीजी ने अम्बपाली से कहा—

[अम्बपाली मधूलिका की ओर लपकती है—अरुणध्वज उसका हाथ पकड़ लेता है—वह थोड़ी देर तक हाथ छुड़ाने की कोशिश करती है—फिर गम्भीर होकर मधु से कहती है—]

अम्बपाली : अच्छा, बोल, क्या ज्योतिषीजी ने कहा ?
मधूलिका : ज्योतिषीजी ने अम्बपाली से कहा—"हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट तुम्हारे चरणों पर लोटेंगे !" वह डरती है, कहीं वही न

राजनर्त्तकी बना दी जाय।
अम्बपाली : (गुस्से में) डरती है ? डरूं क्यों ? डरें चुगलखोर !
अरुणध्वज : तुम दोनों पगली हो। वहा वैशाली की ही इतनी न सुन्दरियां होंगी कि तुम गांव-गंवइयों को कौन पूछे ? चलो, जरा देख आया जाए—नृत्य-गीत, खेल-तमाशे। जरा जी बहला आयें ?
मधूलिका : जरूर जाइए। खेल-तमाशे, नृत्य-गीत ! नृत्य-गीत में आप दोनों की जोड़ी भी कैसी अच्छी रहेगी ! मुझे कांटों में मत घसीटिए !
अरुणध्वज : फिर वही शरारत ! तुझे चलना ही पड़ेगा मधूलिके !
मधूलिका : अच्छा, शायद राधा की महत्ता के लिए कोई पिछलगी ललिता भी चाहिए ही ?
अम्बपाली : तू चुप नही होती रे।

[अम्बपाली एक झटके में अरुणध्वज से हाथ छुड़ाकर मधूलिका को पीटने दौड़ती है—मधूलिका हंसती हुई भागती है—दो सखियों की भाग-दौड़ के पीछे-पीछे अरुणध्वज भी कुंज की ओट हो जाता है—]

दो

[वेगवती नदी की पतली धारा के किनारे बसा आनन्दग्राम—बांस के बने और फूस के छाए छोटे-छोटे घर ..हर घर के आगे बांस से ही बनाए चौकोर बाड़े, जिनके प्रवेश द्वार हर बांस के ही तोरण—बाड़ों और तोरणों पर लिपटी हरी-हरी लताएं फूलों से लदी—कहीं-कहीं इन बाड़ों में छोटे-छोटे बछड़े बंधे—हरिन के छौने इस बाड़े से उस बाड़े में चौकड़ी भरते—जहां-तहां बच्चों के खेल और कलरव—कुछ युवतियां घड़े लिए वेगवती की ओर जातीं—कई जगह बूढ़ियां चरखे कातती दिखाई पड़तीं—

आनन्दग्राम के ठीक नदी-किनारे—एक घर वैसा बना, वैसा ही छाया, वैसे ही बाड़े, वैसे ही तोरण—

इस घर का आंगन—लिपा-पुता, स्वच्छ, निर्मल—आंगन के एक कोने में एक चबूतरा, जिस पर कुछ फूल और तुलसी के पौधे—बीच आंगन में, धूप में बैठी, एक बुढ़िया चरखा कात रही—सामने बरामदे पर एक किशोरी फूलों की माला गूंथ रही और गुनगुना रही—

इस किशोरी को पहचाना आपने ? यह अम्बपाली है—और बुढ़िया उसकी पालिका सुमना—सुमना चरखा कातती-कातती कई बार उसकी ओर नजर उठाकर देखती है फिर जैसे चिढ़कर बोल उठती है—]

सुमना : बस, फूल, फूल, फूल ! दिन फूल, रात फूल; सुबह फूल, शाम फूल !

अम्बपाली : (सिर नीचा किए माला गूंथती-गूंथती) दिन फूल, रात फूल; सुबह फूल, शाम फूल !

सुमना : उलटे मेरा मुंह चिढ़ाती है। चिढ़ा ले, बस, कुछ दिन और ! फिर, जब किसी का घर बसाएगी, तो आटे-दाल का भाव मालूम होगा !

अम्बपाली : जब किसी का घर बसाएगी, तब आटे-दाल का भाव…

(अचानक सिर ऊंचा कर) अच्छा, आटे-दाल का आजकल क्या भाव है मौसी ?

सुमना : चुप नही होती, शोख लड़की। यह जानती तो उसी दिन तेरा गला··· (चरखे से एक हाथ छुड़ा अपने गले पर ले जाती और इस तरह इशारा करती है, मानों गला घोंटना चाहती हो)

अम्बपाली : किस दिन मौसी ?

सुमना : जब तू छोटी बच्ची थी, तेरी मां मर गई थी, और तू कें-कें कर रही थी—कें-कें-कें !

अम्बपाली : तो क्यों नही गला घोंट दिया ? तुम घोंट ही नहीं सकतीं, मेरी अच्छी मौसी !

सुमना : तब न घोटा, अब बिना घोटे न छोड़ूंगी। जब देखती हूं, गुन-गुना रही है, थिरक रही है, या फूल गूंथ रही है ! तू घर-गिरस्ती की कोई बात तो सीखती ही नही। जहां जाएगी, आप जलेगी, मुझे गालियां सुनाएगी।

अम्बपाली : मैं तुम्हें छोड़कर कही नही जाती, मौसी ! और, किसकी मजाल, जो तुम्हें गालियां दे ? (चेहरे पर अभिमान का स्पष्ट आभास)

सुमना : (तमककर) हट, सब लड़कियां ऐसी कहती हैं। (मुंह बनाकर) "मैं—तुम्हें—छोड़कर—कही—नहीं जाती !" लेकिन, जब नए घर मे जाती हैं, फिर···

[इसी समय सजी-धजी मधूलिका लपकती हुई पहुंचती है और सुमना की बात बीच ही में काटती हुई बोलती है—]

मधूलिका : नहीं, नहीं मौसी ! अम्बा सब लड़कियों-जैसी नहीं है ! यह किसी के घर जाएगी ? कहां। इसके चरणों पर तो हजार-हजार राज-कुमार अपने मुकुट चढ़ायेंगे ! हां !

सुमना : हा, हा, इस उम्र में सब लड़कियां राजकुमारों का ही सपना देखती है—हजार-हजार राजकुमार ? लाख-लाख देवकुमार ! लेकिन, जब एक दिन हाड़-मांस का एक साधारण मानव-पुतला होले से हाथ पक-ड़ता और अपनी गिरस्ती की चक्की मे गाढ़ जोतता है, तब उसके सारे

सपने हवा हो जाते हैं

अम्बपाली : मैं नहीं जुतूंगी, नहीं जुतूंगी, नहीं जुतूंगी।

सुमना : यह भी कह, मैं जिन्दगी-भर गाऊंगी, नाचूंगी, माला गूंथूंगी। कह ले, कह ले; जितने दिन कह ले। कह ले, मुझे जला ले। बस, एक बसंत और आने की देर है!

मधूलिका : लेकिन, मौसी, क्या इस उम्र में आप ये सब नहीं करती थी?

सुमना : करती थी क्यों नहीं रे! (शान्त होती) मैं नाचने, गाने या फूल गूंथने से थोड़े मना करती हूं? लेकिन, तुम लोगों को कुछ और भी तो सीखना चाहिए न? जिस घर में जाओ, बोझ होके नहीं जाओ। नारी-जीवन की सार्थकता सिर्फ नाचने, गाने या फूल चुनने में नहीं है, बल्कि अर्द्धांङ्गिनी बनने, गिरस्ती की आधी जिम्मेवारी उठाने की योग्यता तुममें नहीं हुई, तो अवश्य ही तुम्हें पुरुष बिना दासी बनाए नहीं छोड़ेगा। तुम पुरुषों को नहीं पहचानती, प्यारी बेटियो!

मधूलिका : (चौंककर) अरे?

सुमना : अरे क्या! *(बड़ी गम्भीर मुद्रा में)* पुरुष वह नहीं है, जिसे तुम अलग से देखती हो—बांका-बांका छैला, घुंघराले बाल, आंखों में रस, होठ के ऊपर मसें भीगी, चौड़ी छाती फुलाये, उलटे पुट्ठोंवाली भुजाएं हिलाता, मस्ती में झूमता जाता हुआ, कामदेव का सखा! नहीं, यह पुरुष नहीं है। यह तो उसके ऊपर का ढांचा है। पुरुष उसके भीतर है, जो हर कमजोर को अपना शिकार समझता है, हर खूबसूरती को अपनी खुराक—हां, सौन्दर्य उसका भोजन है, निर्बल उसका आखेट। वह झपट्टा मारकर चढ़ बैठता है, घायल कर देता है, फिर भर-पेट खा लेता और चल देता है—दूसरे शिकार और दूसरी खुराक की तलाश में।

मधूलिका : (भयातुर होकर) मौसी, मौसी! यह तुम क्या कह रही हो?

सुमना : मैं सच कह रही हूं बेटी! लेकिन इससे घबराना मत। यह पेटू और शिकार पसन्द जानवर मजे में वश किया जा सकता है। हर पेटू जानवर की तरह यह पूरा आलसी है और यह आसानी से पालतू बनाया

जा सकता है। बड़े-बड़े अगडधत्त वीर पुरुषों को, नारी ने, भालू की तरह, उसके नथने में रस्सी डालकर नचाया है। वह खूंखार जानवर ताथेई-ताथेई करके नाचा है और दुनिया आश्चर्य से यह तमाशा देखती रही है !

मधूलिका : उफ्, मैं दासी बनने की कल्पना से ही कांप जाती हूं मौसी ! मुझे पुरुषों को वश मे करने की यह कला सिखला देना, मेरी अच्छी मौसी ! (अम्बपाली से) क्यों अम्बे, तू नही सीखेगी।

अम्बपाली : तू सीख, मैं उसकी जरूरत नही महसूस करती। मैं सिर्फ गाऊंगी, नाचूंगी, माला गूंथूंगी और कोई मुझे दासी नही बना सकता।

(उसके चेहरे पर अभिमान की लाली दौड़ जाती है)

सुमना : देखती है, मधु, इसका अभिमान ? (अम्बपाली से) लेकिन, यह अभिमान नही है आत्मवंचना है ! मैंने तुझे पाला है, पोसा है, गोद खेलाया है, चलना सिखाया है। मुझे निपूती को तूने सन्तान-सुख दिया है। मैं तुझे कोई अभिशाप देना नही चाहती। लेकिन, अभिमान ? अभिमान का फल···

[उसका गला भर आता है—उसकी आंखों में आंसू झलक आते हैं —उत्तेजना में वह चरखा बन्द कर देती और उसे सभालने लगती है—]

मधूलिका : मौसी, मौसी, तू गुस्से मे आ गई ? (अम्बपाली से) अम्बे, यह तेरी हरकत अच्छी नही। देख, देख मौसी की आखें—

[मधूलिका, चरखा संभालती हुई सुमना के निकट, झुक जाती और और उसका हाथ पकड़ती है—अम्बपाली फूल छोड़कर झटपट उठती और सुमना के निकट दौड़ती है—कुछ फूल आंगन में बिखर जाते हैं—अम्बपाली सुमना के गले से लिपट जाती है—सुमना एकाध बार गला छुड़ाने की कोशिश करती है—किन्तु ज्योंही सुमना अम्बपाली के मर्राए चेहरे को देखती हैं, उसका गुस्सा काफूर हो जाता है, वह कह उठती हैं—]

सुमना : भोली लडकी। अरे, यह क्या (ठुड्डी पकड़ती) तू उदास क्यों हो रही ? यों ही जरा कह दिया। आह, तू मां का दिल जान पाती।

[इतना कह वह उसका माथा चूमने लगती है—उधर बाहर घर्र-घर्र

और टप-टप की आवाज होती—और तुरन्त ही अरुणध्वज आंगन में हंसता हुआ घुसता है—सुमना का अभिवादन कर वह दोनों सखियों की ओर मुखातिब होकर कहता है—]

अरुणध्वज : वाह। तुम लोग अभी तैयार नहीं हुई ?

सुमना : क्या है ? कहां के लिए अरुण ?

मधूलिका : मोसी, उस दिन कहा था न तुम्हें ? हम वैशाली जाना चाहते हैं। आज ही जाना है। (अम्बपाली से) क्या तूने मौसी से नहीं कहा था, अम्बे ?

सुमना : ओहो, तभी आज भोर से ही मालाएं गूंथी जा रही हैं। (अम्बपाली की ठुड्डी पकड़ती हुई) मेरी पगली, तूने मुझसे कहा क्यों नहीं ?

अम्बपाली : मैं नहीं जाती ?

सुमना : नहीं जाती ? क्यों नहीं जाएगी, रे। जा, जा, जरा जी बहला आ। तेरी उम्र की थी, हम भी जाया करती थी। फाल्गुनी उत्सव ? यह तो हम वृज्जियों का महामेला है। जा, परिधान बदल ले, प्रसाधन कर ले। (अरुण से) और अरुण, देखना मेरी अम्बा बिलकुल बालिका है। जरा होशियारी से मेले में रखना।

अम्बपाली : (भनखाकर) मेरी तबीयत अच्छी नहीं; मैं नहीं जाऊंगी ?

सुमना : बस, फिर जिद। देखता है न तू अरुण, जरा मुझे गुस्सा आया और यह मान कर बैठी। कैसी तुनकमिजाज ? (मधूलिका से) मधू, क्या देखती है, जा, जल्द इसका परिधान ठीक कर दे। ओहो ? (मधूलिका को सिर से पैर तक निहारती हुई) मैंने ध्यान ही नहीं दिया था, तू इसी से सज-सजाकर आई है।

[मधूलिका अम्बपाली को घसीट कर घर में ले जाती है—अरुणध्वज सुमना के नजदीक बैठ जाता है—सुमना फिर चरखा कातती हुई उससे बातें करती है—]

सुमना : तू कितने साल का हुआ रे, अरुण ?

अरुणध्वज : मां कहती थीं, इक्कीसवां जा रहा है।

सुमना : मेरी अम्बा का भी यह सोलहवा है।

अरुणध्वज : (बड़ी सादगी से) कवियों ने इसे ही न षोडशी कहा है, मौसी ?

सुमना : हां, हां, यही षोडशी ?—जब जवानी बचपन की खिड़की से बाहर की दुनिया को झांकती है। अजीब उम्र है यह, अरुण।—जब संसार की सब चीजें चंचल, नृत्यशील, रंगीन और संगीतमय दिखाई पड़ती हैं। जब लड़कियां समझ नहीं पाती, वे क्या हैं ? प्रदर्शन जब उनका एकमात्र मनोरथ होता है और प्रसाधन एकमात्र व्यवसाय।

अरुणध्वज : लेकिन, अम्बा को तुम्हीं ने अभी-अभी प्रसाधन के लिए प्रेरित किया है।

सुमना : किया है, क्यों ? समझे ? हर मादा जानवर की तरह नारी भी अपने को नर से हीन अनुभव करती है। इस हीनता को छिपाने के लिए ही वह प्रसाधन की ओर प्रवृत्त होती है। हम नारियों की साज-सिंगार की प्रवृत्ति हमारी हीनता की सूचक है, अरुण ! यह हीनता तब दूर होती है, जब नारी में मातृत्व आता है—वह बिलकुल बदल जाती है, महामहिमान्वित हो जाती है। मातृत्व नारीत्व का चरम उत्कर्ष है। (कहते-कहते उसका चेहरा रक्ताभ गम्भीर हो उठता है, उसकी आंखें मुंदने-सी लगती हैं, थोड़ी देर के भावावेश के बाद) अच्छा, तेरी मां अब कैसी है अरुण।

अरुणध्वज : अच्छी ही हैं; हां, जब-तब तबियत कुछ सुस्त हो जाया करती है।

सुमना : तो तू वधू क्यों नहीं लाता ? बेचारी की सेवा वह करती। अब तो तू सयाना हुआ, रे।

अरुणध्वज : वधू क्या यों ही मारी-मारी फिरती हैं मौसी ?

सुमना : अरे इसी फाल्गुनी उत्सव में देखना। कितने जोड़े लगते हैं वहां। मेरी लगन भी वहीं लगी थी। हां, हां, तू अब ब्याह कर ले। एक-दो साल में तो अम्बा के लिए भी वर चाहिए ही।

[प्रसाधन-शृंगार से सज्जित अम्बपाली को लिए-दिए मधूलिका आंगन में आती है—उसका रूप देखकर अरुण की टकटकी बंध जाती है—

सुमना उसे देखते ही खिल पड़ती है, बोलती है—]

सुमना : अरुण बेटा, मेरी अम्बा-ऐसी सुन्दरी समूचे वृज्जिसंघ मे नहीं मिल सकती ? तू वैशाली के इस फाल्गुनी उत्सव में देख लेना।
मधूलिका : (धीरे से) तब तो यह जरूर ही राजनर्तकी चुनी जाएगी।
सुमना : यह तू क्या बोली, मधु।
अम्बपाली : (जो मधूलिका की बात सुन चुकी है, खीझ में) मैं वैशाली नही जाती।
मधूलिका : वाह नही जाती। चलना ही पड़ेगा, हां—

[मधूलिका अम्बपाली की बांह पकड़कर उसे घसीटती, घर के बाहर तोरण के पास ले आती है—पीछे-पीछे सुमना और अरुण है—तोरण के सामने अरुण का रथ खड़ा है—वह आगे बढ़कर घोड़े की रास संभालता है—अम्बपाली को आगे ठेलकर मधूलिका भी रथ पर जा चढ़ती है—अरुण भी रथ पर आ रहता है—तीनों सुमना का अभिवादन करते हैं—]

सुमना : देखना, अरुण। मेरी अम्बा भोली है; कही भीड़ मे खो न जाए। (घोड़े सर्राटे से आगे बढ़ते हैं—सुमना टकटकी लगाए रथ को देखती रहती है—उसके मुंह से निकल पड़ता है—) भोली बच्ची ?

तीन

[आदिकवि वाल्मीकि द्वारा प्रशंसित, अपनी विशालता और भव्यता से स्वर्ग की गरिमा को भी पराजित करने वाली वैशाली नगरी—उसमें वृज्जियों का वह भव्य विश्व 'संथागार', जिसमें उनके संघ के 7,707 राजा समय-समय पर एकत्र होकर परामर्श और निर्णय करते—

संथागार के विशाल प्रासाद के ऊपर के तोरण पर एक विशाल सिंह की मूर्ति, जो एक पैर उठाए, मानो झपट्टा मारना चाह रहा—उसके दोनों ओर दो गज-मूर्तियां, जिनके सूंड़ उठकर ठीक सिंह-मूर्ति के ऊपर, आपस में जा मिलते हैं—सूंड़ के इस मिलने की जगह से एक लम्बा स्तम्भ, जिस पर वृज्जियों की राष्ट्रीय पताका लहरा रही—

लाल रंग की वह पताका, जिस पर उजली सिंह-मूर्ति अंकित—

संथागार पर पंक्ति से, तोरण के चार एक तरफ, चार दूसरी तरफ, कुल आठ गुम्बद—इन गुम्बदों के रंग क्रमशः नील, पीत, हरित, मंजिष्ठ, लोहित, श्वेत, अवदात और व्यापुक्त, जो वृज्जियों के आठ कुलों के सूचक हैं—

संथागार के नौबतखाने से तरह-तरह के बाजे, बजकर दिग्दिगन्त को मुखरित कर रहे हैं—

और, संथागार के सामने विस्तृत मैदान में, पहले जहां वैशाली का बाजार लगा करता, आज फाल्गुनी उत्सव की तैयारियां हैं—

वृत्ताकार बनी है वह उत्सव-भूमि—वृत्त के बीच में ऊंची रंगभूमि है, जहां युवक-युवतियों का नृत्य-गान हो रहा—रंगभूमि को केन्द्र मानकर समूचा वृत्त आठ भागों में विभक्त किया गया है—जहां की दूकानें, परिधान, रथ आदि उपर्युक्त आठ रंगों के ही—

फूलों और सोमरस की दूकानों पर सबसे अधिक भीड़—

प्रसाधन-शृंगार से आभूषित युवक-युवतियों का अनुपम जमघट…

युवकों के कामदार कटिपट और लम्बे बालों को संवारनेवाली जरीदार

पट्टियां'''युवतियों के रंगीन परिधान और कंचुकियों पर चकमक गोटे-बूटे—फूलों के आभूषणों और मालाओं से दोनों लदे-से—

रंगभूमि से नृत्य-संगीत की धारा प्रवाहित हो आठों भागों को जैसे डुबो देना चाहती हो—सबके पैरों में नृत्य की गति, सबके स्वर में संगीत के सुर—एक मोहक-मादक उत्तेजना से वायुमण्डल व्याप्त—

इसी वातावरण में, बीच में अरुणध्वज और उसके दाएं अम्बपाली बाएं मधूलिका, तीनों मस्त हो तमाशे देख रहे—जिसकी नजर अम्बपाली पर पड़ती, वही चौंक उठता, टकटकी लगाकर उसे देखता रह जाता—उनकी यह भाव-भंगिमा अम्बपाली को व्याकुल कर देती है—वह भीड़ से अलग हटकर अरुण से कहती है—]

अम्बपाली : अरुण, अब चलो, कहीं विश्राम करें। मैं थक गई।

अरुणध्वज : थक गई। वाह, अभी देखा क्या, जो थक गई। अभी तो सारा देखने को धरा पड़ा है।

अम्बपाली : मैं अब नहीं देखना चाहती।

अरुणध्वज : क्यों ?

अम्बपाली : ये लोग अच्छे नहीं दिखाई देते। सब यों घूरते हैं, जैसे आंखों से निगल जाएंगे ?

मधूलिका : (चौंकती-सी) आंखों से निगल जाएंगे ?

अम्बपाली : हां, हां, आंखों से निगल जाएंगे। मैं तो इन्हें देखते ही कांप उठती हूं, मधु। ये आंखें हैं या''' (अरुण से) नहीं, नहीं, अरुण, चलो। मैं बाज आई इसे देखने से।

मधूलिका : (व्यंग्य से) या दिखाने से। मेरी रानी, अभी तू देखने-दिखाने से यों कांपती है और जब हजार-हजार राजकुमार'''

अम्बपाली : फिर वही शैतानी (भौंहें चढ़ाकर अरुण से) अरुण चलते हो ? चलो।

अरुणध्वज : चलूं ? कहां ? संसार में कोई ऐसी जगह बता दे, जहां आंखें न हों।

अम्बपाली : लेकिन आंख-आंख में फर्क है।

मधूलिका : और, मैंने उस दिन कहा था, सपने-सपने में फर्क है और फर्क है रूप-रूप में, तब तू नहीं मानती थी। भला, मुझे कोई क्यों नहीं देखता, घूरता या तेरे शब्दों में, निगलता।

अम्बपाली : (झुंझलाकर) मैं क्या जानूं ?

मधूलिका : जानेगी, जानेगी। और, जब जान जाएगी, भर-मुंह बातें भी नहीं करेगी।

अम्बपाली : (अरुण से रुलाई के शब्द में) तुम मुझे ले चलते हो या नहीं, अरुण !

अरुणध्वज : अच्छा चल, सोमरस की दूकान पर (हाथ से बताते हुए) थोड़ा पी ले, थकावट दूर हो जाएगी।

अम्बपाली : (चौंककर) सोमरस ! मौसी कहती थी, लड़कियों को सोमरस नहीं पीना चाहिए।

अरुणध्वज : हर मौसी मना करती है और हर लड़की पीती है—यही होता आया है उस युग से, जब दुनिया में लड़कियां पैदा हुई और देवताओं ने सोमरस भेजा।

अम्बपाली : देवताओं ने भेजा ?

अरुणध्वज : हां, हां, देवताओं ने भेजा ! सुरों द्वारा सुर-लोक से भेजी गई होने के कारण ही तो यह अलौकिक पेय सुरा कहलाती है। शेषनाग की रस्सी बना, मन्दराचल की मथानी से क्षीर-सागर मथकर देवताओं ने इसे निकाला। सुधा नाम से उसे पीकर आप अमर हो गए और सुरानाम से हमारे पास, इस मर्त्यभुवन में भेजा। हमने उसे सोमरस का सुन्दर नाम दिया।

अम्बपाली : इसे ही पीकर देवता अमर हुए ?

अरुणध्वज : हां रे, इसे ही पीकर देवता अमर हुए और इसे ही पीकर हमारे ऋषियों ने ऋग्वेद की कविता की, सामवेद के गीत गाए और यजुर्वेद से यज्ञपूत ही अमृतपुत्र कहलाए।

अम्बपाली : तो मौसी मना क्यों करती थीं ?

मधूलिका : उस दिन वह फूल गूंथने से भी तो मना कर रही थी न ?

अम्बपाली : ठीक रे मधु, बुढ़ियों की ऐसी ही बातें होती हैं। (अरुण

से) लेकिन, लगता है यह कैसा अरुण ?

अरुणध्वज : कुछ मत पूछ, अम्बे ! जहां हलक से नीचे उतरा, सारी थकावट दूर—नस-नस में ताजगी दौड़ने लगती है। थोड़ी देर में ही मालूम होता है, जैसे बांहों के नीचे से पंख फूट निकले हैं और हम हवा मे उड़े जा रहे हैं !

अम्बपाली : जैसे सपने मे लोग उडा करते हैं ?

अरुणध्वज : बस, बस वैसे ही। कुछ क्षणो मे ही यह हमें स्वर्गलोक में उडा ले जाता है ! स्वर्गलोक में—जहां अमरता है, शाश्वत यौवन है, संगीत है···

मधूलिका : (बीच में ही बात काटकर) और जहां सुनहले पंखों वाले लाख-लाख देवकुमार हैं···

अम्बपाली : (झपटती हुई) तू चुप नहीं होती।

अरुणध्वज : (अम्बपाली का हाथ पकड़े हुए) चल, चल, जरा पी लें।

[एक हाथ से अम्बपाली और दूसरे हाथ से मधूलिका को पकड़े अरुणध्वज हंसते हुए सोमरस की दूकान पर जाता है—युवक-युवतियों के रेल-पेल में तीनों घुस जाते हैं और एक मंच पर बैठ कर सोमरस पीते हैं—एक दूसरे को प्याले-पर-प्याले पिलाए जा रहे हैं—

उसी समय चार राजकुमारों के साथ पुष्पगन्धा, वैशाली की आज तक की राजनर्तकी वहां पहुचती है—संघ के प्रतिनिधि की हैसियत से ये पांचों नई राजनर्त्तकी के लिए सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का चुनाव करने को किशोरियों का निरीक्षण करते फिर रहे हैं···उनमें से एक राजकुमार की नजर अम्बपाली पर पड़ती है—]

राजकुमार : (पुष्पगन्धा से) भद्रे, जरा उस किशोरी को तो देखें।

पुष्पगन्धा : कौन ? वह ? (अम्बपाली की ओर उंगली उठाती)

दू० राजकुमार : (उसी ओर उंगली करके) वह ? वही न ?

प० राजकुमार : हां, हा, वही ! कितना अपूर्व सुन्दरी ! ऐसी सुन्दरी इस उत्सवमण्डली में दूसरी नहीं है, क्यों भाई ? (तीसरे राजकुमार से)

ती० राजकुमार : इतनी जल्दी मत कीजिए ! हमें एक ऐसी सुन्दरी

चुनना है, जिसका जोड़ हमारे संघ की तरह ही संसार में न मिले। जो कीर्ति वृज्जिसंघ को प्राप्त है, उसके अनुरूप ही तो राजनर्त्तकी भी चुनी जानी चाहिए न ? जिस गौरव को देवी पुष्पगन्धा ने स्थापित किया है, उसकी रक्षा क्या हम इतनी जल्दीबाजी करके कर पाएंगे ?

पुष्पगन्धा : कुमार, आपका कहना सही है, हमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए लेकिन, वह कोई साधारण रूपसी नहीं मालूम होती है, कुमारी !

प० राजकुमार : आप ठीक कहती हैं; मुझे शक है, देवसभा की उर्वशी भी इतनी सुन्दरी होगी ! (राजकुमारों से) जरा, इसके एक-एक अंग को देखो, भाइयों ! उफ् ! यह तो सांचे की ढली मालूम होती है—सुन्दरता, मानो, नारी का रूप धर कर हमारे सामने साक्षात् खड़ी है !

ती० राजकुमार : (गौर से निरीक्षण करके) लेकिन कुछ गंवई-सी मालूम होती है । क्यों, आप क्या समझते हैं ! (दूसरे से पूछता है)

दू० राजकुमार : लेकिन वृज्जिसंघ नगर और ग्राम का कोई भेद नहीं करता । यहां सबकी समता है । अपने गुण से हर नागरिक राजा हो सकता है अपने रूप से हर सुन्दरी राजनर्त्तकी के गौरव को प्राप्त कर सकती है । (चौथे से, जो सब में अमरक है) क्यों, आप नहीं कुछ बोल रहे ?

चौथा राजकुमार : इसमें सन्देह नहीं कि हमने जितनी सुन्दरियां देखी हैं, उनमें वह सर्वश्रेष्ठ हैं । किन्तु, मेरा खयाल है, अपनी उत्तराधिकारिणी पसन्द करने की सबसे ज्यादा जिम्मेवारी देवी पुष्पगन्धा पर है । इसलिए, हमलोग इस पर ज्यादा विवाद न कर अन्तिम निर्णय इन्हीं पर छोड़ दें ।

पुष्पगन्धा : यह आपकी कृपा है, लेकिन इससे हममें से किसी की जिम्मेवारी कम नहीं होती । हां अच्छी बात हो, हम थोड़ा और घूमकर देख लें ।

[इन पांचों का दल आगे बढ़ता है—उधर सोमरस पीकर मस्त बनी अम्बपाली, अरुणध्वज और मधूलिका के साथ निकलती है वह, खूब हंस रही है—पहले जैसी शरमीली लड़की नहीं है—प्रगल्भता पूर्वक हंसती जा रही है—]

अरुणध्वज : तुझे क्या हो गया है, अम्बे ! कहीं इतना भी हंसा जाता है ?

अम्बपाली : (उसकी आवाज लड़खड़ा रही है, बीच-बीच में रुक जाती है) कहीं इतना भी···हंसा जाता है ! हा-हा-हा-हा !! क्यों मधु कही—इतना भी—हंसा—जाता है !! हा-हा-हा-हा !!!

मधूलिका : (डांटती-सी) यह क्या अम्बे ?

अम्बपाली : ह-ह-ह-ह !···ही-ही-ही-ही !! यह क्या अम्बे ? यह क्या ? !···अरे, यह क्या रे मधु !···मधु !!···हा-हा-हा-हा···हो-हो-हो-हो।

मधूलिका : (नाराजी और हुकूमत के स्वर में) तू चुप नहीं होती।

अम्बपाली : (घूरकर देखती) चुप नहीं होती ! चुप नहीं·· हा-हा-हा-हा··· हो···हो···हो···हो··मधु ! मधु !! अरी, मैं उड़ी जा रही हूं, रे मधु···मधु, पकड़ रे ! रे···ये मेरे पंख···(हाथों को हवा में डैनों-से फटकारने लगती है)

मधूलिका : (उसके हाथों को पकड़ लेती है, अरुण से नाराजी में कहती है) अरुण, तुमने यह अच्छा नहीं किया···

अरुणध्वज : तू घबरा नहीं, मधु, मैं इसे तुरन्त अच्छा कर देता हूं। नशा थोड़ी हरारत खोजता है। (अम्बपाली से) नाचेगी नहीं रे !

अम्बपाली : नाचेगी नहीं रे ! मैं नाच रही हूं रे। मैं नाच रही हूं··· रे···मधू···छोड़ रे मधु···(झटके से हाथ छुड़ा लेती है और गति से हाथ-पैर चलाने लगती है) मैं नाच रही रे···मधु···नाच रे ! ···अरुण नाच रे (वह दौड़कर अरुण का हाथ पकड़ लेती है) नाच···रे···नाच···

[अरुण उसके हाथों में हाथ दिए उसे रंगभूमि में ले जाता है—मधूलिका भी पीछे-पीछे जाती है—अनेक युवक-युवतियों का नृत्य हो रहा है—अम्बपाली और अरुण भी नाचने लगते हैं—अरुण थक जाता है, लेकिन अम्बपाली अकेली नाचती ही रह जाती है—लोगों का ध्यान धीरे-धीरे-उसके अपूर्व नृत्य की ओर जाता है—सब अपना-अपना नृत्य बन्द कर उसी का नृत्य देखने लगते हैं—चारों ओर से हर्षध्वनि और पुष्पवर्षा हो रही है—

पुष्पगन्धा भी अपनी मण्डली के साथ वहां पहुंच जाती है—वह और

चारों राजकुमार उसका नृत्य देख मुग्ध हो जाते हैं—राजकुमारों का स्वीकृति-सूचक रुख देख पुष्पगन्धा आगे बढ़ती और उसके गले में राजनर्त्तकी की जयमाला डाल देती है—चारों राजकुमार चिल्ला उठते हैं—'राजनर्त्तकी की जय'! 'राजनर्त्तकी की जय'!! उनकी जय की ध्वनि-प्रतिध्वनि उपस्थित जनता की ओर से होती है; इस जयकार से चकित हो, मानों कुछ होश में आ, अम्बपाली मधूलिका के पास दौड़ जाती है, जो वहां खड़ी एकटक उसे देख रही थी—]

अम्बपाली : मधु, मधु···राजनर्त्तकी···राजनर्त्तकी !

पुष्पगन्धा : (उसके निकट पहुंचकर) हां, राजनर्त्तकी। कल तक की राजनर्त्तकी मैं; आज से राजनर्त्तकी तुम।

अम्बपाली : राजनर्त्तकी !···मैं ··मैं (आश्चर्य से आंखें विस्फारित करती) राज-नर्त्तकी ?···मैं राजनर्त्तकी ? मैं···

पुष्पगन्धा : हां, हां, तुम राजनर्त्तकी, तुम !

अम्बपाली : (अचानक विक्षिप्त-सी होकर) मधु, मैं राजनर्त्तकी··· अरुण, मैं राजनर्त्तकी !···राजनर्त्तकी···हु-हु-हु-हु···मैं राजनर्त्तकी···हा-हा-हा-हा···मैं राजनर्त्तकी···हो-हो-हो-हो (जोरों से अट्टहास करने लगती है।)

मधूलिका : (व्याकुल होकर) अम्बे, क्या बक रही है, अम्बे ?

अम्बपाली : बक रही है ?···मैं—बक—रही ?·· (फिर उत्तेजित होकर) नहीं, नहीं, मधु, मैं राजनर्त्तकी···मैं राजनर्त्तकी···रे···हा-हा-हा हा···ही-ही-ही-ही···मैं राजनर्त्तकी मधु, मधु···मैं···राजनर्त्तकी···हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट···हो-हो-हो-हो···मेरे चरणों पर रे, मेरे चरणों पर···(मधूलिका की आंखों को देखकर) मधु, तू चूर क्यों रही है रे···मैं राजनर्त्तकी !

अरुणध्वज : तू होश मे नही है अम्बे ! ओहो, मधु, मैंने क्या किया ? (वह विह्वल-सा दिखाई देता है)

पुष्पगन्धा : कुछ बुरा नहीं किया आर्य ! तुम सौभाग्यशाली हो, तुमने संघ को राजनर्त्तकी दी। तुम कौन हो, कहां के हो ? कौन वह सौभाग्यशाली

वंश है ? कौन वह सौभाग्यशाली ग्राम है ?

अरुणध्वज : (विह्वलता में ही) मधु, मधु यह क्या हो रहा है ? ओहो अम्बे, अम्बपाली, यह क्या ? (थोड़ा शांत हो पुष्पगन्धा से) भद्रे, हम आनन्द ग्राम से आए हैं ''ओहो, यह क्या ?

अम्बपाली : (प्रमत्त बनी बके जा रही है) मैं राजनर्त्तकी'''अरुण''' अरुण मैं राजनर्त्तकी !'''ह-ह-ह-ह'''मधु'''तू हंसती क्यों नहीं रे ?''' मैं राजनर्त्तकी'''हजार-हजार'''हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट''' मुकुट'''मुकुट हजार-हजार राजकुमारो के मुकुट मेरे चरणों पर लोटेंगे रे'''चरणों पर'''हा-हा-हा-हा'''मेरे चरणों पर'' हो-हो-हो-हो'''तू हसती क्यो नही है, मधु ?'''तुम हंसते क्यों नहीं हो अरुण ?'''हंसो''' हंसो'''हंसो'''हा-हा-हा-हा'''हो-हो'''हो-हो—

[अरुण के चेहरे का रंग उड़ जाता है—वह कांप उठता है—फिर मूर्ति-सा खड़ा देखता रहता है—मधूलिका कभी अम्बपाली और कभी अरुण का चेहरा देखती किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन रही है—इधर लोग पुष्पवर्षा और आनन्द ध्वनि किए जा रहे हैं—उसी समय एक रथ आकर नजदीक में खड़ा होता है—पुष्पगन्धा अम्बपाली का हाथ पकड़कर रथ पर चढ़ा लेती है—खिल-खिल हंसती अम्बपाली अरुण और मधूलिका की ओर मुखातिब हो बोलती है—]

अम्बपाली : मधु'''मैं राजनर्त्तकी'''अरुण, मैं राजनर्त्तकी'''राजनर्त्तकी '''राजनर्त्तकी'''हा-हा—हा-हा'''हजार-हजार राज'''

['नई राजनर्त्तकी की जय', 'अम्बपाली की जय', पुष्पगन्धा कहती है—सब उसके जयनाद में साथ देते हैं—इसी तुमुल जयनाद में रथ चल पड़ता है—अरुणध्वज पत्थर की मूर्ति-सा खड़ा है—मधूलिका थोड़ी दूर 'अम्बे ! अम्बे !' चिल्लाती दौड़ती है—फिर गिर पड़ती है—]

चार

[वैशाली का राजकीय वसन्तोद्यान—आम, लीची, महुए के पे
क्रमशः पंक्तियों में लगे—आम की पीली, लीची की हरी और महुए की
अर्द्ध-विकसित श्वेत मन्जरियों की सुगन्ध से प्रकृति मह-मह कर रही—
क्यारी-क्यारी में रंग-बिरंगे फूल—बीच में एक बंगला, पुष्पों से घिरा,
लताओं से सदा—

सुबह की सुनहली धूप से सब चीजें जगमग हो रहीं—
बंगले के कमरे के मुंह पर जो कामदार पर्दा झूल रहा है, वह हटता
है—भीतर से अम्बपाली निकलती है—आंखों में खुमार—चेहरे पर नींद
की छाया—चकित नेत्रों से इधर-उधर देखती है—बरामदे पर आकर
पुकारती है—]

अम्बपाली : कोई है ?

[एक परिचारिका दौड़कर आती है—उसके सामने झुककर अभि-
वादन करती और बोलती है—]

परिचारिका : भद्रे, जो आज्ञा !

अम्बपाली : (आश्चर्यमयी मुद्रा में) आज्ञा ? मैं कहां हूं ? उफ्, यह
कैसा सपना ?

परिचारिका : नहीं आर्ये, यह सपना नहीं, प्रत्यक्ष सत्य है। यह वैशाली
का राजकीय वसन्तोद्यान है और मैं हूं आपकी परिचारिका।

अम्बपाली : परिचारिका ? (झिझककर) मुझे किसी की परिचर्या की
जरूरत नहीं। क्या मैं बूढ़ी हूं, रोगी हूं ?

परिचारिका : (किंचित मुस्कान से) जरूरत पड़ेगी, पड़ेगी आर्ये !

अम्बपाली : (उत्तेजना में) नहीं, नहीं ! (उसांसें लेती हुई) आह,
मधु कहां, अरुण कहां ? (परिचारिका से) बता, बताती क्यों नहीं ?

[बंगले के बरामदे के दूसरे छोर से पुष्पगन्धा आती दिखाई पड़ती है – उसकी आहट सुन परिचारिका उस ओर देखती है और ससम्भ्रम हट जाती है—अम्बपाली पुष्पगन्धा को घूर-घूरकर देखती है—वह निकट पहुंचती है—परिचारिका अन्ततः वहां से हट जाती है—]

पुष्पगन्धा : क्यों ? तबियत अच्छी है न ?
अम्बपाली : आप कौन है ?
पुष्पगन्धा : भूल गई ?
अम्बपाली : भूल गई ! (गौर से देखती है)
पुष्पगन्धा : कहीं देखा नहीं ?
अम्बपाली : (सोचती हुई) सपने मे शायद कभी देखा है ? आप कौन हैं ?
पुष्पगन्धा : (मुस्कराती) मुझे लोग पुष्पगन्धा कहते हैं, यह नाम कभी सुना है ?
अम्बपाली : यह नाम तो सुना है—वृज्जिसंघ की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी, वैशाली की राजनर्त्तकी।
पुष्पगन्धा : ठीक; कल तक मैं वृज्जिसंघ की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी, वैशाली की राजनर्त्तकी थी। लेकिन, आज मैं वह नहीं रही।
अम्बपाली : आज क्यों नहीं रही ?
पुष्पगन्धा : यह भी भूल गई ? रात का सपना याद कर—तू जो रात राजनर्त्तकी चुनी गई, वैशाली की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानी गई।
अम्बपाली : (कातरता से) भद्रे, मैं सपनों से परीशान हूं। मेरी मधु कहां, मेरा अरुण कहां ? अरुण··· (चिल्लाती है)
पुष्पगन्धा : (उसकी आवाज में गम्भीरता आ जाती है) यों लोग नहीं चिल्लाते अम्बे ! तू आज जहा खड़ी है, उस स्थान की मर्यादा देख। वृज्जि-संघ की कुमारियां मर्यादा का उल्लघन नहीं करती। जिस दिन हमारी कुमारियां मर्यादा छोड़ देंगी, संघ की नीव हिल जाएगी। नारियां राष्ट्र की नींव की ईंट होती हैं, नीव की चन्द ईंट हटा दो, बड़ी-से-बड़ी इमारत भहरा पड़ेगी।

अम्बपाली : मर्यादा ? मर्यादा मुझसे टूटी है क्या भद्रे ? क्षमा करें। मुझे मेरी मधु से, मेरे अरुण से मिलाइए। आह, मेरी मौसी ! मैं कहां से वैशाली आई, मैं सचमुच मेले में खो गई। (उसकी आंखों से आंसू छल-छला आते हैं)

पुष्पगन्धा : (जरा-सी मुस्कराती हुई) तू खो गई और संघ ने नर्त्तकी पाई। कोई खोता है, तभी कोई पाता है, अम्बे !

अम्बपाली : (गिड़गिड़ाती हुई) आर्ये, अब सपने में न रखिए—मुझे मेरे साथियों से मिलाइए, या आनन्दग्राम भिजवाइए।

पुष्पगन्धा : आनन्दग्राम रथ गया है, तेरी मौसी आती ही होंगी। मधु और अरुण संघ के अतिथि-भवन में है। तू ज़रा प्रसाधन कर ले, इसी रूप में मिलेगी उनसे ? अब तू अपने पद-गौरव को समझ।

अम्बपाली . पद-गौरव ?

पुष्पगन्धा : यों भूलने, विभोर होने से काम नहीं चलता, अम्बे ! अब तू राजनर्त्तकी है। कल संघ ने तुझे राजनर्त्तकी के रूप में अभिषिक्त जो किया। जिस अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी के जल की कुछ बूंद पाने के लिए कोशल और मगध की महारानियां तरसती रहती हैं, वह सरोवर अब तेरे अंगराग से आए दिन रंगीन और सुवासित बनेगा। वृज्जिसंघ के जिन राज-कुमारों के गर्वोन्नत सिर हिमालय के शृंग की तरह उन्नत और प्रदीप्त हैं, जिन्हें कोई पदक्रांत नहीं कर सकता, झुका नहीं सकता, उन्हीं सिरों के हजार-हजार मुकुट तेरे चरणों पर अवनत होंगे, लोटेंगे। तुझे इस गौरव के अनुरूप ही अपने को ढालना होगा, अम्बे !

अम्बपाली : क्षमा कीजिए, आर्ये ! मैं राजनर्त्तकी नहीं बनना चाहती।

पुष्पगन्धा : कोई चाह कर राजनर्त्तकी नहीं बन पाती, अम्बे ! हमारा यह संघ जम्बूद्वीप-भर में इसलिए प्रसिद्ध है कि यहां की नारी और नर अपने व्यक्तित्व को संघ पर समर्पित कर देते हैं। संघ जिसको जो जिम्मेदारी देता है, वह उसे निभाता है। संघ की आज्ञा पर हमारे सैनिक युद्ध-क्षेत्र में अपनी गरदन हंसते-हंसते कटा डालते हैं, हमारे नाविक अपनी पूरी ज़िन्दगी बजड़ों पर ही बिताकर नागरिक जीवन के सुख-ऐश्वर्य से दूर रहकर, हमारे संघ को नाना तरह के धन-रत्न से विभूषित करते हैं, तो फिर तुम-

हम उसी सघ की आज्ञा पर अपनी जिन्दगी को संघ के मनोरंजन मे उत्सर्ग कर दें, तो इसमे अनौचित्य क्या है, आश्चर्य क्या है ?

अम्बपाली : क्या यह सघ की जबरदस्ती नही ?

पुष्पगन्धा : जिस दिन हम जिम्मेवारी को जबरदस्ती समझने लगेंगे, उसी दिन संघ का पूरा शीराजा बिखर जाएगा, अम्बपाली ! वृज्जिसघ स्वाधीन नर-नारियों का सघ है, उसमें जबरदस्ती कहां ? हा, उनके द्वारा दी गई सुरक्षा और स्वाधीनता की भरपाई अगर हम अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह निभा कर करते है, तो इसमे जबरदस्ती कहा है, अम्बे ! याद रख, हम जिससे पाते हैं, उसे कुछ देना भी होता है।

अम्बपाली : लेकिन, यह अजीब देन है। सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और राज-नर्त्तकी ! उफ् ! (उसांसें लेती है)

पुष्पगन्धा : सर्वश्रेष्ठ पशु ही देवताओं को बलि दिए जाते हैं, अम्बे ! मूर्ख कहेंगे, यह कैसा अविचार ? लेकिन, उन्होंने जिन्दगी का रहस्य नही समझा। जिन्दगी की सार्थकता मनमाना जीना या लम्बी आयु पाना नही है। जिन्दगी की सार्थकता है किसी बड़े काम के लिए उत्सर्ग कर दिया जाना—फिर वह उत्सर्ग की हुई जिन्दगी एक दिन की हो या सौ बरस की, वह खाड़े की धार पर उतरे या चन्दन की चिता पर चढ़े ! (कहते-कहते उसका मुंह तमतमा जाता है; उसके चुप होते ही अजीब सन्नाटा छा जाता है)

अम्बपाली : (भयभीत-सी) देवि !

पुष्पगन्धा : (जैसे उसकी आवाज सुनी हो न हो) और एक बात ! तूने सौन्दर्य का महत्व ही नही जाना !

अम्बपाली : मैं यह सब झंझट क्या जानू, देवि !

पुष्पगन्धा : झंझट नही है, तत्व है तत्व। दुनिया मे तीन चीजों की आकाक्षा सबको होती है—धन की, ज्ञान की, सौन्दर्य की। इनमे सौन्दर्य की महिमा सबसे बड़ी है। एक गरीब आदमी परिश्रम और सचपवृत्ति से धनी बन सकता है; एक मूर्ख अध्ययन और अभ्यास से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। लेकिन, लाख सिर पटककर भी कोई कुरूप सुन्दर नहीं बन सकता। सौन्दर्य सिर्फ विधाता के हाथो से गढ़ा जाता है—यह सोलह आने

दैवी देन है। यह दैवी देन तुच्छ मानवीय कामनाओं की पूर्ति में न व्यय होकर, उच्च आदर्श की पूर्ति में लगे, इससे बढ़कर इसका क्या सदुपयोग हो सकता है, अम्बे !

अम्बपाली : तो आप राजनर्त्तकी की ज़िन्दगी को उच्च आदर्श की पूर्ति मानती हैं ?

पुष्पगन्धा : कोई काम स्वयं ही उच्च या नीच नहीं होता अम्बे ! एक हत्या हत्यारेपन की सूचना देती है, दूसरी हत्या हत्याकारी को देवता बना डालती है। ज़रा सोच तो, अपनी सभी व्यक्तिगत रुचियों, इच्छाओं, आकांक्षाओं को ठुकराकर, लात मारकर अपने-आपको संघ के प्रत्येक सदस्य के मनोरंजन के लिए अर्पित कर देना—अपने व्यक्ति को समष्टि में विलीन कर देना—इससे बढ़ कर आदर्श की उच्चता एक सुन्दर नारी के लिए क्या हो सकती है ? सुन्दरी नारी—जिसका कदम-कदम डगमगाता है ! वृज्जिसंघ की कुमारियां ही इतनी बड़ी साधना कर सकती हैं, अम्बे !

अम्बपाली : (रुखाई से) साधना का साधन या आत्म का हनन ?

पुष्पगन्धा : शुरू में ऐसा ही भ्रम होता है। किन्तु तथ्य यह है कि ज्योंही हमने अपने को उनके लिए अर्पित कर दिया, हम उनके मनोरंजन की चीज़ नहीं रह जाती, बल्कि वे ही अपने को हमारे मनोरंजन के साधन बना डालते हैं—हमें अपना सिर उनके निकट झुकाने की ज़रूरत नहीं होती, उन्हीं के हज़ार-हज़ार राजमुकुट चरणों की धूल चाटने लगते हैं। हम नारियों की भी एक महिमा है, यह क्यों भूल जाती है, भोली लड़की !

अम्बपाली : (दीर्घ उच्छ्वास के साथ, धीमे स्वर में) आह, मेरे अरुण !

पुष्पगन्धा : अरुण ! अरुण भी तो वृज्जिसंघ का एक सदस्य है। कौन उसे तेरे पास आने से रोक सकता है ? जा, तू जल्द प्रसाधन तो कर ले। चयनिके ! (पुकारती है)

[पुकार सुनकर परिचारिका शीघ्र उपस्थित होती है—उदास, अन-मनी अम्बपाली उसके साथ बंगले के भीतर जाती है—पुष्पगन्धा सामने के उद्यान में घमती है—रह-रहकर कांप उठती है—अन्ततः उसकी आंखों से आंसू झरने लगते हैं—क्यों ? किसके लिए ?]

पांच

[वेत्रवती नदी की पतली धारा सन्ध्या की किरणों से रंगीन हो रही है—आनन्दग्राम की नारियां घड़े लिए आती और जल ले जाती हैं—उनका आना-जाना लगा है—

धारा के उतार की ओर चरवाहे अपनी गायों और दूसरे जानवरों को लाते, पानी पिलाते और गाते-बजाते गांव की ओर चल पड़ते हैं—

कुछ बच्चे धारा के चढ़ाव की ओर तटभूमि की शीतल बलूई जमीन पर, बालू से घरौंदे का खेल कर रहे हैं—वे खेलते, उछलते, किलकारियां भरते भागदौड़ मचाते—

ऊपर, असाढ़ के धूसर आसमान पर, पूरबी क्षितिज की ओर बादल का एक टुकड़ा दिखलाई पड़ता है, जिसकी ओर नारियों का ध्यान बार-बार जाता है—

सुमना घड़ा लिए आती दीखती है—उदास, उतरा हुआ, अनमना है उसका चेहरा—घड़ा धारा के किनारे रख वह बहुत देर तक बच्चों का यह घरौंदा-खेल देखती है—रह-रह कर दीर्घ उच्छ्वास आप-से-आप निकल पड़ते हैं—

आखिर घड़े में पानी लेकर जाना ही चाहती है कि मधूलिका कलसी लिए आती दिखाई पड़ती है—वह रुक जाती है—मधूलिका उसे देख लपककर पहुंचती और पूछती है—]

मधूलिका : मौसी, सुना, तुम फिर वैशाली गई थी।

सुमना : हां, गई थी। अम्बपाली ने रथ भेजा था।

मधूलिका : अब तो वह राजरानी हो गई, मौसी! तकदीर इसी को कहते हैं।

सुमना : लेकिन, वह जो इसे तकदीर माने। कहती थी—मौसी, सुख-ऐश्वर्य से भरी यह वैशाली मुझे नहीं सुहाती; मेरा मन तो आनन्दग्राम की

आम्रवाटिका या वेगवती के तट पर ही चक्कर काटता रहता है ! तुझे भी बुलाया है—एक दिन जरा हो आओ न, मधु !

मधूलिका : मैं उस ओर पैर बढ़ाने की हिम्मत नहीं कर सकती, मौसी ! सारी वैशाली स्वप्नपुरी-सी मालूम होती है। मैं हमेशा ही सपने से भागती रही हूं। (कुछ सोचकर) अरुण की चर्चा करती थी ?

सुमना : की थी; कई बार की। लेकिन मैं क्या बताती भला ?

[दूर से आती बंशी की हृदयवेधक ध्वनि सुनाई पड़ती है—ध्वनि कानों में पड़ते ही मधूलिका सिहर उठती है—उसके चेहरे पर करुणा की छाया दौड़ जाती है—वह स्वर में विभोर-सी हो जाती है—सुमना का ध्यान भी उस ओर चला जाता है—वह घड़ा रख देती और सुनने लगती है—मधूलिका की कलसी आप ही कमर से खिसक जाती है—तब जैसे चौंककर, वह कहती है—]

मधूलिका : यह अरुण की ही वंशी है, मौसी !

सुमना : पहचानती हूं, मधु, पहचानती हूं। इस वंशी को अब इस आनन्द-ग्राम में कौन नहीं पहचानता ?

मधूलिका : उसे यह क्या हो गया है, मौसी ? भोर ही, मुंह-अंधेरे, इस आम्र-वाटिका मे पहुंच जाता है और वंशी के सुर में करुणा की धारा प्रवाहित करने लगता है। और, अब इस शाम को जो शुरू किया, तो एक पहर रात बीते तक बजाता जाएगा। कई बार कहा, इस वाटिका को भूल, इस कलमुंही वंशी को छोड़। लेकिन, कौन उसे समझा सके ?

सुमना : तू पुरुष के हृदयों के बारे में नहीं जानती बेटी ! वह अजीब चीज है। औरत के दिल से वह बिलकुल अलग चीज है। औरत का दिल शीशा है—तुनुक पारदर्शी; जरा-सी तेज आंच लगी, टुकड़े-टुकड़े हो गया। रोशनी गायब, किस्सा खतम। लेकिन, मर्द का दिल फौलाद है। वह जल्द गरम होता नहीं; लेकिन जब एक बार गरम हो गया, आप जलेगा, नजदीक की चीजों को जलाएगा। जब औरत के दिल पर सदमा देखो, रोओ। जब मर्द के दिल पर ठेस लगे, होशियार हो जाओ।

मधूलिका : सही कहती हो, मौसी ! मैं तो उसे देखते ही भयभीत हो

जाती हूं। उस दिन वैशाली में जब लोग अम्बा को रथ पर ले चले, मैं दौड़ी, वह खड़ा रहा। दूसरे दिन वे हमें अम्बा के पास चलने को बुलाने आए, मैं गई, वह खिसका भी नहीं। जब हम वैशाली से लौट रहे थे, मैं रोती थी, वह चुप था। लेकिन, अब वही मैं हूं, जो अपने को बदलना चाहती हूं, कभी-कभी इसमें सफल भी होती हूं, लेकिन अरुण ! मालूम होता है, जैसे अम्बा की याद दिन-दिन उसके दिल के गहरे-से-गहरे स्तर में पहुंचती जाती है। अम्बा को भूलने के बदले वह दिन-दिन अपने को भूलता जाता है। मुझे डर होता है। कहीं वह पागल······ (एकबारगी वह सिर से पैर तक कांप जाती है)

सुमना : *तेरा डर निराधार नहीं है, मधु ! सब कुछ हो सकता है। मैं तो* बूढ़ी हो गई, उसकी मां भी बूढ़ी है—हम तो अपने को ही नहीं सम्भाल पातीं। यह काम तेरा है कि तू अरुण की रक्षा करे। फिर जवानी ही जवानी की काट है, बेटी !

[मालूम होता है, जैसे वंशी की ध्वनि निकटतर होती जाती है—बातचीत में गर्क होने पर भी दोनों इसको महसूस करती हैं—पहले मधु उस ओर नजर करती है, फिर सुमना—दूर पर, नदी के कछार पकड़े, वंशी बजाता, आता हुआ अरुणध्वज दिखाई पड़ता है—]

मधूलिका : मौसी, वह, वही हैं न ?

सुमना : हां, वही तो है।

मधूलिका : *आज इधर कहां भटक पड़ा ?* मालूम होता है, शायद उसे खबर हो गई कि तुम वैशाली से लौट आई हो ? **(सजल नेत्र और कातर वचन में)** देख तो, मौसी, इन तीन महीनों में ही वह क्या-से-क्या हो गया है ? कहां गई वह चौड़ी छाती, वे उलटे पुट्ठों वाली मस्तानी बांहें। आह ! ये बेसंवारे बाल—ये लटपटे कटिपट। धनुष-बाण की जगह यह करुणा की बेटी बांसुरी ! मौसी, मौसी, मेरी तो छाती फटी जाती है ! **(उसकी आंखों से अश्रुधारा चलने लगती है)**

सुमना : मधु ! मधु ! ऐसे मौके पर छाती को कठोर बनाना पड़ता है, बेटी ! चल, हम नदी के ऊपर चलें, कछार पर ही उससे मिलें।

[दोनों, तट के ऊपर कछार पर आती हैं—सूरज डूबने जा रहा है—वह छोटा-सा बादल का टुकड़ा आधे आसमान को ढक चुका है—अरुण सिर नीचा किए पगडण्डी पकड़े बंशी बजाता आ रहा है—उसकी दशा देख सुमना की आंखों में सावन-भादों उमड़ आते हैं—मधूलिका भर्राई आवाज में पुकारती है—]

मधूलिका : अरुण !
अरुणध्वज : (सिर उठाकर दोनों को घूरता है, फिर बोलता है) कौन ? मौसी ? प्रणाम मौसी !
सुमना : अरुण, मैं वैशाली गई थी, अम्बा तेरी याद करती थी।
अरुणध्वज : (प्रश्नवाची स्वर में) याद ! करती थी ? अम्बा मुझे याद करती थी ? क्यों मौसी ?
सुमना : हां, हां, याद करती थी। बहुत याद करती थी। एक दिन जाओ न ? मधूलिका को भी लेते जाना !
अरुणध्वज : (करुणामय हंसी के साथ) मधूलिका को भी लेते जाना ! खूब ! चल रे मधु, चल। वैशाली चल ! चल रे, तुझे भी राजनर्तकी बना आऊं। तू भी राजनर्तकी बनना; हजार-हजार राजकुमारों के मुकुटों को ठुकराना ! ! हां, हा, चल। कब चलती है, रे ?
मधूलिका : (आंचल से आंसू पोंछती) मौसी !
सुमना : अरुण, यों होश मत खो !
अरुणध्वज : (गम्भीर होकर) होश ! मैं खोऊंगा ? नहीं मौसी, मैं होश नहीं खो सकता। मैं होश खोऊंगा, तो अम्बा की याद कौन करेगा ? नहीं-नहीं, मैं होश नहीं खो सकता। अच्छा, बता अम्बा कैसी है ?
सुमना : बड़े मजे में; तेरी बहुत याद करती थी !
अरुणध्वज : (फिर पूर्व-सा विद्रूप स्वर में) 'तेरी बहुत याद करती थी !' 'बड़े मजे में !' (वह अकस्मात् ठठाकर हंस पड़ता है) मौसी, बड़े मजे में कैसे याद की जाती है, मौसी ! मेरी अच्छी मौसी, जरा मुझे बता दो। बता दो। (मधूलिका की ओर मुखातिब होकर) तू जानती है, मधु ? तो क्यों नहीं बताती ? हां, हां, तुम लोग 'बड़े मजे में' याद करना जानते.

हो। वहां अम्बा 'मजे मे' याद करती है, यहां तू······(मधूलिका की आंखों मे अश्रु-प्रवाह देखकर उसकी भाव भंगी तुरत बदल जाती है) अरे, यह क्या, तू रो रही है! रो रही है! तू 'मजे में याद करना' नही जानती! हां, हां, यह कला सिर्फ, अम्बा······

सुमना : (बीच ही में बात काटकर) यह तू क्या हुआ जा रहा है, बेटा ?

अरुणध्वज : उस दिन मां कह रही थी, तू क्या हुआ जा रहा है बेटा ? आज मौसी कह रही है, तू क्या हुआ जा रहा है बेटा ? क्या मैं सचमुच कुछ हुआ जा रहा हू मौसी ! नही, नहीं, मर्द कुछ नही हो सकता। सिर्फ लडकियां सब कुछ हो सकती हैं ? अम्बा राजनर्त्तकी हुई, मधु राजनर्त्तकी होगी—(सिर खुजला कर जैसे याद करता) वह···क्या नाम है उसका, उसका···हा, रेणुका ! ···रेणुका राजनर्त्तकी होगी, और वह (फिर सिर खुजलाता) मधु, जरा गांव की सब लडकियों के नाम बताती जा, भाई ! तुम सब एक दिन राजनर्त्तकी हो जाओगी !! (मधूलिका फूट-फूटकर रोने लगती है) अरे, तू तो हिचकियां लेने लगी ! चुप रे चुप ! हंस रे हस ! देखा नही, अम्बा उस दिन किस तरह हंस पड़ी थी—जोर-जोर से ठठा-ठठाकर, ह-ह-ह-ह···ही-ही-ही···हो-हो-हो-हो ! तू भी हस ! नही हंसती ? (मधूलिका की ठुड्डी पकड़कर) समझा रे, समझा। तुझे सोमरस चाहिए। चल-चल; उस दूकान पर चल। तुझे भी थोड़ा सोमरस पिला दूं—सोमरस, सुधा, सुरा ! फिर तू भी हंसेगी—हसेगी और कहेगी—'अरुण ! मैं राजनर्त्तकी···मैं राजनर्त्तकी···अरुण ! मैं···'

[तब तक चारों ओर छाये बादल में अचानक बिजली कौंध जाती है—फिर जोरों से बादल गरज पड़ता है—अरुण आसमान की ओर देखता और 'मौसी, प्रणाम' कहकर जिस रास्ते आया था, उसी से द्रुतपद भागता है—सुमना और मधूलिका विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखती रह जाती हैं—]

दूसरा अंक

एक

[वैशाली का शरद उपवन—बीच में एक तालाब, जिसमें कुमुद के शत-शत फूल खिले हुए—फलों को ठेलते हुए चकवों के अवगिनत जोड़े किलोल कर रहे—उनके कलरव और पंख की फटफट से समूचा तालाब मुखरित हो रहा—तालाब के परले कछार पर फूले कास की झुरमुटें सिर हिला रहीं—शेष तीन किनारों पर हर सिंगार के अनेक झाड़, जिनके फूल टप-टप करते थाले में झड़ रहे—

तालाब से थोड़ा हटकर राजनर्तकी का शरद-प्रासाद—बिलकुल सुफेद, दूध का धोया-सा उसका प्रतिबिम्ब तालाब में भी दिखाई पड़ता है--

प्रासाद की छत पर खुले आसमान के नीचे, उजला दपादप फर्श बिछा—चारों ओर कुमुद के बन्दनवार लटके—बन्दनवार के बीच-बीच चांदी के पिंजड़ टंगे जिनमें खंजन खिलवाड़ कर रहे—फर्श के बीच में कुछ ऊंचा मंच, जिसका कारचोबी का काम चमचम कर रहा—मंच पर सोमरस से भरी चांदी की सुराहियां और चुन्नी की प्यालियां रखी हैं—

बिलकुल साफ आसमान पर शरद की पूर्णिमा का चन्द्रमा पूरब क्षितिज में सिर उठाकर अपनी हंसी बिखेर रहा है—असंख्य तारे चमचम कर रहे हैं—चारों ओर स्वच्छ, धवल, स्निग्ध चन्द्रिका छाई हुई—पेड़ों की फुनगियों पर हल्का-हल्का सफेद कुहासा छाया हुआ है—

छत पर परिचारिका के साथ अम्बपाली आती है—

यह पांच वर्ष पहले की अम्बपाली नहीं रह गई—तब वह किशोरी थी, अब युवती है—उसके अंग-अंग भर चुके हैं—जवानी छलकी पड़ती है—चेहरे पर ओज है, पैरों में गम्भीरता—सिर कहता है, आसमान मेरा;

पैर कहते हैं, जमीन मेरी—

बूटे-गोटे से चकमक बना श्वेत रेशमी परिधान है उसका, जिसकी किनारी में मुक्ताओं की झालरें झलमल कर रहीं—उजली बारीक कंचुकी के ऊपर लटकती मोती की माला की सुफेदी को कंचुकी में टंके दो बड़े हीरों की दीप्ति और भी शुभ्र बना रही—शरीर के शेष नग्न भाग जैसे चांदनी की सुफेदी में घुले जा रहे हों—

वह चांद को एकटक निहारती है—फिर आसमान का जैसे निरीक्षण कर जाती है—उसके बाद खंजन के एक पिंजड़े के निकट जाती और उसे हिला देती है—खंजन पंख फड़फड़ाने लगते हैं, वह मुस्कराती है—पिंजड़े से हटकर वह फर्श के मंच पर जाती और मसनद से उठंगकर बैठती है—परिचारिका से कहती हैं—]

अम्बपाली : चयनिके, थोड़ा सोमरस पिला।

[चयनिका सुराही से डालकर प्याली में उसे सोमरस देती है—कई प्यालियां गट-गट पी जाती है—फिर कहती है, अभी रहने दे, और चांद की ओर देखती लेट जाती है—थोड़ी देर तक उसे देखती रहने के बाद चयनिका से पूछती है—]

अम्बपाली : चयनिके; आदमी चांदनी क्यों पसन्द करता है, तू जानती है?

चयनिका : *शायद इसलिए कि चांदनी बड़ी शीतल होती है, भद्रे!*

अम्बपाली : शीतल होने के कारण?

चयनिका : तो भला?

अम्बपाली : दुर पगली, कहीं आदमी शीतलता पसन्द करता है? आदमी उष्णता पसन्द करता है, गरमी पसन्द करता है। इसी गरमी के पाने के लिए सोमरस पीता है, इसी गरमी की तलाश में प्रिया या प्रियतम के वक्षः-स्थल की खोज में व्याकुल रहता है। *गरमी जिन्दगी है! और शीतलता?* शीतलता, ठण्डक तो मौत है, रे! आदमी शीतल हुआ, ठण्डा पड़ा और मरा! कहीं मौत भी पसन्द की जाती है? (मुस्करा पड़ती है)

चयनिका : तो चांदनी क्यों पसन्द की जाती है, आर्ये!

अम्बपाली : अब मुझी से सवाल कर बैठी ? पहले तू तो बता ले ?
चयनिका : शायद इसलिए कि चांद बहुत सुन्दर है और 'सुन्दरे किं न सुन्दरम !'
अम्बपाली : खूब ! 'सुन्दरे किं न सुन्दरम्' ! लेकिन चांद की सुन्दरता का भण्डा उसी दिन फूट गया, जिस दिन एक नारी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो, देवताओं के राजा समेत, यह जमीन पर उतरा और इनाम में अपने शरीर का यह काला धब्बा पाया। तूने अहिल्या का नाम सुना है, चुन्नी ?
चयनिका : वही न, जिनकी गिनती पंचकन्याओं में होती है ?
अम्बपाली : हां, वही। उन्होंने अपने सौन्दर्य की महिमा से देवों को, देवराज को, जमीन पर उतरने को लाचार किया, हम नारियों की गरिमा बढ़ा दी; इसलिए अभिशप्त होने पर पंचकन्याओं में उनकी गिनती है, वह प्रातःस्मरणीया है। *(हाथ जोड़कर मन-ही-मन प्रणाम करती)* चुन्नी, कुछ और तो अटकल लगा ?
चयनिका : मेरी समझ में कुछ नहीं आता, आर्ये !
अम्बपाली : नहीं आता ? तो सुन। आदमी चांदनी इसलिए पसन्द करता है कि इसमें एक कुहेलिका है, प्रहेलिका है। सत्य के सीधे-सादे वास्तविक रूप से आदमी घबराता है। हमेशा देखोगी, विज्ञान की अपेक्षा आदमी कविता को अधिक पसन्द करता है।
चयनिका : कविता तो मुझे भी बहुत पसन्द आती है भद्रे !
अम्बपाली : सभी को पसन्द है। आदमी निखालिस चीज कभी नहीं पसन्द करता। वह निखालिस न सत्य पसन्द करता है, न असत्य; न ज्ञान पसन्द करता है, न अज्ञान। वह दोनों का सम्मिश्रण खोजता है। आदमी अन्धकार नहीं पसन्द करता; क्योंकि वह डरता है। यों ही सूरज की रोशनी भी उसे पसन्द नहीं; क्योंकि वह सब चीजों को उसके सामने नगा-सा करके रख देती है। चांदनी वह इसलिए पसन्द करता है कि इसमें न तो अन्धकार-वाला डर है, न रोशनीवाला नंगापन ! आदमी स्वभावतः रहस्यवादी होता है, चयनिके !
चयनिका : (साश्चर्य) रहस्यवादी !
अम्बपाली : हां, रहस्यवादी ! हम सुम परिधान ही क्यों पहनते हैं ?

तू जानती है ? स्वर्ग मे सभी नंगे रहते हैं। हां, सभी देवकुमार, देव, देव-पत्नियां, अप्सराएं ? वे परिधान की आवश्यकता ही नही महसूस करते—बिल्कुल नग्न रहते हैं, एक दूसरे से घुलते-मिलते हैं। न अवरण, न बन्धन। लेकिन, आदमी को अपनी वासना के नग्न प्रदर्शन मे लज्जा हुई, उसने परिधान बनाए, वासना को रहस्यमय रूप दिया। एक रहस्य से हजारों रहस्यों की सृष्टि हुई। अब हालत यह है कि वह बिना रहस्य के जी नही सकता ?

[इसी समय दूसरी परिचारिका नीचे से आती है; कहती है—]

दू० परिचारिका : राजकुमार वसुबन्धु चार-पांच राजकुमारों के साथ पधारे हैं, आर्ये ?

अम्बपाली : (अभिमान से ओत-प्रोत, भौहें चढ़ाकर) कह दे, अभी ठहरें। और सुन, जब तक सब राजकुमार न आ जाए, उन्हें नीचे ही बैठाती जाना। जा—

[दूसरी परिचारिका जाती है—]

अम्बपाली : सुनती है, चुन्नी ! नारी की ज़िन्दगी दो ही तरह हो सकती है, (पश्चिम की ओर, डूबने के पहले, लाल बल-से रहे मंगल तारा की ओर दिखाती) या तो उस मंगल तारा की तरह, जो सन्ध्या की लाली में अकेला उगता, कुछ देर अपनी झलक अकेला दिखलाता और चुपचाप सदा के लिए अकेला डूबने जा रहा है ? (पूरब की ओर मुस्कराते-से चांद को दिखाती) या इस चांद की तरह, जो हजार-हजार तारों से घिरा रहकर अपनी हास्य ज्योत्स्ना से जगत् को हमेशा पुलकित-प्रफुल्लित किए रहता है। नारी के लिए बीच का रास्ता नही है, चयनिके ? (थोड़ी देर रुककर) तू इन तारों को पहचानती है, चुन्नी ?

चयनिका : जमीन से ही कहां फुर्सत मिलती है, जो ऊपर देखू, भद्रे ?

अम्बपाली : (मुस्कराकर) शोख लड़की। (उसके गाल पर एक दुलार भरे प्रेम की हल्की चपत लगाती) अच्छा देख। (आसमान के तारों की ओर उंगली से बताती हुई) यह है आकाशगंगा—इसी मे नग्न देव-सुन्दरियां और अप्सराएं उभ-चुभ नहाकर अनन्तयौवना बनी रहती हैं; इसी के

किनारे गुरुपत्नी तारा युवा शिष्य सोम के लिए व्याकुल फिरा करती थीं और इसी में से एक घड़ा जल लेकर वह रोहिणी पहली असाढ़ को धरती पर उड़ेल देती है, जिससे सूखे पेड़ हरे हो जाते हैं, मरी दूब जी उठती है और बीज में बेहोश सोया अकुर अचानक जग पड़ता और जमीन फोडकर बाहर निकल आता है ! वह है कृत्तिका—कचपचिया—कैसी ? हीरे की कणिकाओं के चमचमाते गुच्छे जैसी। और वह है तुला—डण्डी-तराजू-जो रात भर इस पृथ्वी पर होनेवाले पाप-पुण्य को तौलती रहती और उसका लेखा-जोखा उस सुदूर ध्रुव को देती जाती, जो इस चंचल संसार—जगत्यां जगत्—में एकमात्र स्थिर वस्तु है ?

चयनिका . और, वह क्या है आर्ये, सप्तर्षि न ? (उंगली से बताती)

अम्बपाली : हां, ध्रुव को केन्द्र बना, साल-भर मे एक अर्धवृत्त बना लेने वाले सप्तर्षि वही हैं। उनमें वह हैं वसिष्ठ।

चयनिका : जिनकी बगल में वह अरुन्धती हैं न ? उस दिन अपनी एक सखी की शादी मे गई थी; शादी के बाद उसे लोगों ने अरुन्धती दिखाई थी। ऐसा क्यों होता है, आर्ये ?

[अम्बपाली इस प्रश्न से चौंक उठती है—उसे तुरत याद हो आती है, बचपन की बातें—जब वह सोचती थी, वह भी वधू बनेगी, मण्डप पर भांवरें देगी, अरुन्धती देखेगी—किसके साथ ?—उसके सामने अरुण की तस्वीर खड़ी हो जाती है—वह एकटक उस काल्पनिक तस्वीर को देखती रह जाती है—उसकी सांस तेज होने लगती है—उसकी आंखें डबडबा आती हैं—वह कांप उठती है—भर्राई आवाज में कहती है—]

अम्बपाली : थोड़ा सोमरस ला, चुन्नी ?

[चयनिका सोमरस देती जाती है, वह प्याली-पर-प्याली खाली करती जाती है—लगातार उसे यों पीते देखकर चयनिका भयभीत हो जाती है—उसके हाथ कांपने लगते हैं—सोमरस की कुछ बूंदें मंच पर छलक जाती हैं—अम्बपाली इसे देखती है और कहती है—]

अम्बपाली : अरे, तेरे हाथ क्यों कांप रहे हैं रे ! दे, दे। देती जा; देती जा। बड़ी अच्छी चीज है यह चयनिके। सब कुछ भुला देती है; सब कुछ।

सब कुछ भुला देती है, आनन्दलोक में पहुंचा देती है। दे, ढाल (दो-तीन प्यालो और पीती है —फिर प्याली रखकर कहती है)—चुन्नी, तू जानती है, आनन्दलोक किसे कहते हैं ?

चयनिका : मैं क्या जानूं, भद्रे !

अम्बपाली : आनन्दलोक और कुछ नहीं, वह विस्मृति का लोक है ! विस्मृति का लोक—जहां सब कुछ भूल जाया जाए। न दुनिया की याद रहे, न दीन की; न यह लोक याद रहे, न परलोक। आनन्द एक भावावेश है, चयनिके ! जहा भावावेश टूटा, अपनी याद आई, दुनिया की याद आई, फिर आनन्द का पंछी भी फुर्र से उडा। आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द, परमानन्द —जो नाम दे दो, सबका मूलसूत्र एक ही है—भावावेश, विस्मृति, वेहोशी, बेखुदी !

[नीचे से फिर परिचारिका आती है और अभिवादन कर कहती है—]

दू० परिचारिका : नीचे राजकुमारों का ठट्ट जुटा है, भद्रे ! वे कहते हैं, आज शरद-पूनो है, विलम्ब क्या उचित है ?

अम्बपाली : (चयनिका से) हा, हां, आज शरद-पूनो है रे ! मैं यह भी भूली जा रही थी। आज ही कृष्ण ने लीला रचाई थी न ? बीच मे कृष्ण, चारों ओर गोपियां। नीचे यमुना कलकल कर रही, ऊपर चाद हंस रहा ! आज अम्बपाली भी रास रचाएगी: इस पूनो के चाद के नीचे रस की यमुना बहाएगी। वहां था एक पुरुष; हजार नारियां। आज होगी एक नारी—और हजार-हजार—हा, हजार-हजार राजकुमार। (दूसरी परिचारिका से) जा—उन्हें भेज।

[परिचारिका नीचे जाती है—राजकुमारों का ठट्ट आने लगता है चयनिका सुराही से सोमरस ढालती है—अम्बपाली अपने हाथों से उन्हें सोमरस देती जाती है—उनके सोमरस पीने के बाद अम्बपाली खड़ी होती है, अंगड़ाई लेती है, एक बार चांद को देखती है, फिर गाने और नाचने लगती है—]

कह गई यह चांदनी—
सो रही मैं आज उन्मन
बह रही थी पवन सनसन
अधर गुनगुन
चरण रुनझुन
स्वप्न की तस्वीर-सी उतरी परी उन्मादिनी।
कौन थी, क्या चांदनी ?
कह गई यह चांदनी—
तोड़ यह भव-बन्ध सारा
तोड़ विधि की निठुर कारा
उड़ चलो चल
दूर नभ-तल
स्वर्ग-गंगा के किनारे आज एक कुटिया बनायें
रास उसके धवल आंगन में मुदित मन हम रचायें
छुन-छुन-नन
मधुर झिजन
गगन गनगन हो उठे, डोले धरित्रि प्रमादिनी
बोलती थी चांदनी!

[बीच-बीच में अम्बपाली किसी राजकुमार का हाथ पकड़कर नाचने लगती है—वह निहाल हो उठता है, दूसरों की भवों पर बल पड़ जाते हैं—उनकी भाव-भंगी देख नाचती-ही-नाचती यह सोमरस की प्याली-पर प्याली उन्हें देने लगती है—सब मस्त होकर नाचने लगते हैं—इस शरद में भी सबके चेहरे पर पसीने की बूंदें हैं—अम्बपाली का चेहरा तारा-मण्डि शरद-चन्द्र-सा लग रहा है—]

दो

[वैशाली में दूसरी बार भगवान् बुद्धदेव पधारे हैं और अम्बपाली की आम्रवाटिका में ठहरे हैं—

इस खबर से सारी वैशाली में हलचल मच जाती है और वहां के नागरिक और नागरिकाएं अपने-अपने रथ सजाकर उस आम्रवाटिका की ओर चल पड़ते हैं —

अम्बपाली को खबर होती है, वह अपने सजे-सजाए रथ पर चढ़कर चल पड़ती है—उसका वह गंगा-जमुनी रथ, जिसमें दो पुष्ट श्वेत अश्व जुते—रथ के ऊपर वृज्जिसंघ की राजनर्तकी की मीनकेतन-पताका लहरा रही, जिसमें नीली जमीन पर सोने के तार से बनी मछली की आकृति—

आम्रवाटिका के द्वार पर से उतर, अम्बपाली अपनी परिचारिका चपनिका को बुद्धदेव के पास आज्ञा लाने को भेजती है—

आम्रवाटिका के मध्य में भगवान् बुद्ध शिष्यों के साथ विराजमान हैं—बीच में एक ऊंचा आसन है, जिस पर वह बैठे हैं—सिर, भवें, दाढ़ी मूंछ सबके बाल मुड़े हुए—छोटे-छोटे पीले कपड़ों के टुकड़ों से सीकर बनाया गया उनका लबादा मगध के छोटे-छोटे धनखेतों की तरह लगता है—वह बिलकुल ध्यानमग्न हैं—उनकी बगल में उनके प्रधान शिष्य आनन्द हैं और आसन के नीचे उनका शिष्य समूह—सबकी वेशभूषा बुद्ध की ही तरह की—

चपनिका को आते देख एक शिष्य बढ़ता और उसके हाथ का एक पुर्जा आनन्द को लाकर देता है—ध्यानस्थ बुद्ध जब आंखें खोलते हैं, तब आनन्द पुर्जा पढ़कर उनसे कहते हैं—]

आनन्द : भगवान्, अम्बपाली आपके दर्शन चाहती है।

भगवान् बुद्ध : (गम्भीर भाव से) अम्बपाली ?

आनन्द : हां, भगवान्, वैशाली की राजनर्त्तकी।

भगवान् बुद्ध : धर्म का मार्ग सबके लिए खुला है, आनन्द ! (चयनिका यह सुनती है और सिर झुकाकर चल देती है—उसके कुछ दूर निकल जाने के बाद) लेकिन, एक बात है आनन्द ! अम्बपाली के बारे में मैंने जो कुछ सुन रखा है, मैं चाहता हूं, उसके आने के पहले हमारे सभी शिष्य आंखें मूद लें ?

आनन्द : (विस्मित होकर) आंखें मूंद लें !

भगवान् बुद्ध : तुम्हें आश्चर्य हो रहा है, आनन्द !

आनन्द : भगवान्, आश्चर्य होने की बात ही है। हम भिक्षु हैं, कोई आए कोई जाए, हम पर उसका असर क्या हो ? क्यों हो ? भिक्षुकों के बारे में ऐसा सोचना क्या उन पर अविश्वास या उनका अपमान नहीं ? (आनन्द का चेहरा लाल हो उठता है)

भगवान् बुद्ध : यहां अपमान और अविश्वास की कोई बात नहीं है, आनन्द ! हम तो धर्म के मध्यम मार्ग के अनुयायी हैं। आज भी मेरे कानों मे निरंजना के तीर का वह स्वर्गिक गान नहीं भूलता—"वीणा के तार को इतना मत ऐंठो कि वह टूट जाय, न इतना ढीला रखो कि शब्द ही न निकले !"

आनन्द : लेकिन सम्यक् समाधि के बाद हममें इतनी साधना तो होनी ही चाहिए कि हमारा मन झकोरों में भी मणिदीप-सा निर्धूम और एकरस बना रहे;

भगवान् बुद्ध : तुमने ठीक कहा, आनन्द ! लेकिन, एक बात हमे नहीं भूलनी है। हम बच्चों की तरह दीपशिखा को चमकता खिलौना समझकर उसके पकड़ने मे कहीं अपना हाथ न जला लें।

आनन्द : इसे स्पष्ट किया जाए, भगवान् !

भगवान् बुद्ध : सुनो, सौन्दर्य अगर सच्चा सौन्दर्य है तो उसमें एक जादू होता है। जादू और कुछ नहीं, सम्मोहन है। जो सतत चेतन, हमेशा चौकस मन नहीं है, उस पर सम्मोहन का असर होकर रहेगा; और कितने, ऐसे सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने मन पर स्थायी लगाम दे रखी है ? इसलिए ऐसे मौकों से बचकर ही रहना श्रेयस्कर है। अन्धेरी रात में कभी सांप की आंखें तुमने देखी हैं ? दीपशिखा-सी जलती वे सुन्दर, मादक आखें। उन

आंखों से आखें लड़ाना कोई बुद्धिमानी नहीं है, आनन्द !

आनन्द : लेकिन, इस तथ्य से कब तक आंखें मूदी जा सकती हैं, भगवान् !

भगवान् बुद्ध : तो तुम तार को ऐंठते जानेवाली बात का समर्थन कर रहे हो। ऐसी ऐंठन में कितनी ऐसी वीणाएं टूट गईं, जिनकी झंकार से संसार मे न जाने कितने अधिक सुख का गुंजार हो पाता। प्राचीनकाल में हमारे कुछ ऋषियों ने यही गलती की थी। तपस्या के झोंके में पहले तो तपते-तपते शरीर गला लिया, फिर उसके प्रतिक्रिया-स्वरूप एक रम्भा, एक मेनका, एक उर्वशी की मुस्कान पर सारी साधना की अंजिल चढ़ा दी। मध्यम मार्ग पकडो, आनन्द, मध्यम मार्ग !

आनन्द : भगवान् की आज्ञा सिर-आंखों पर। भिक्षुओ, आप आंखें मूंद लें।

[सभी भिक्षु आंखें मूंदते हैं—आनन्द भी आंखें मूद लेते हैं—भगवान् बुद्ध आनन्द को भी आंखें मूदते देखकर कहते हैं—]

भगवान् बुद्ध : तुम्हें इसकी जरूरत नहीं है, आनन्द ! आनन्द तो बुद्ध की छाया है, जिसका बुद्ध पर असर नहीं हो सकता, उसका आनन्द पर भी असर नही होगा।

[आनन्द आंखें खोल देते हैं—दोनों दूर पर आती अम्बपाली को देखते हैं—भगवान् बुद्ध कहते हैं—]

भगवान् बुद्ध : देखते हो, आनन्द, यह रूप ?

आनन्द : सचमुच, भगवान् ! ऐसा रूप मैंने कहीं नहीं देखा था।

भगवान् बुद्ध : यह लौकिक रूप है ! मुझे यह देखकर, आनन्द, बुद्धत्व-प्राप्ति वाले दिन के दृश्य याद आ रहे हैं, जब मार की प्रेरणा से ऐसी ही अनेक परियां तप भंग करने को मेरे निकट पधारी थीं।

आनन्द : भगवान् पर, उनका क्या असर होता भला ? यह मार का सरासर अविचार था।

[तब तक अम्बपाली निकट आ जाती है—आसन के नीचे आकर, सिर भुका,भगवान् का अभिवादन करती है—भगवान् बुद्ध हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद देते हैं—अम्बपाली घुटनों पर भुकी हाथ जोड़कर कहती है—]

अम्वपाली : भगवान्, मैं कृतार्थ हो गई। सारी वैशाली मे भगवान् को मेरी ही आम्रवाटिका पसन्द आई। मेरे सौभाग्य का क्या कहना !
आनन्द : आर्ये, तथागत के धर्म मार्ग में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं है। उनके लिए सभी प्राणी समान हैं। रहा सौभाग्य ! सो कोई किसी को देता नहो, वह उसकी अपनी चीज होती है।

[भगवान् बुद्ध सिर्फ मुस्कराते रहते हैं—]

अम्वपाली : भिक्षुवर, अम्बपाली सौभाग्य पाती नहीं, लेती भी है। एक सौभाग्य अनायास मिला, तो दूसरा वह स्वय लेने आई है।
आनन्द : (कुछ सावधान-सा होकर) आपका मतलब ?
अम्वपाली : मैं भगवान् को अपने घर भोजन करने को आमन्त्रित करने आई हूं।
आनन्द : भिक्षु के लिए भोजन के आमन्त्रण की आवश्यकता नही होती, आर्ये ! वह अनिमन्त्रित ही जाता और जहा जो प्राप्त होता है, वहीं वह भोजन कर लेता है। यही नियम है।
अम्वपाली : (साधिकार) नियम है, होगा। किन्तु अम्लपाली को विश्वास है, वह भगवान् से जो वरदान मांगेगी, उसमे उसे 'नहीं' नहीं मिल सकती।

[आनन्द भगवान् की ओर देखते हैं—भगवान् मौन रह जाते हैं—लेकिन, उस मौन से स्वीकृति स्पष्ट भलक रही है—अम्वपाली का मस्तक कृतज्ञता से भुक जाता है—हाथ बढ़ाकर बुद्ध का चरण छूती हैं—चलने के लिए खड़ी होती हुई आनन्द से कहती है—]

अम्बपाली : भिक्षुवर, अम्बपाली अपनी ज़िन्दगी मे पहली बार, भगवान् के लिए अपने हाथों रसोई बनाने जा रही है। क्या वह आशा कर सकती

है; भगवान् के साथ आप भी पधारेंगे ?
आनन्द : छाया शरीर को कैसे छोड़ सकती है, आर्ये !

[इधर बगीचे के फाटक पर कोलाहल बढ़ता जाता है—अम्बपाली भगवान् का अभिवादन कर चलती है—चलते समय अम्बपाली का ध्यान भिक्षुओं की मुंदी आंखों की ओर जाता है—वह आश्चर्यचकित हो भगवान् की ओर देखती है—बुद्ध मुस्करा रहे हैं—उसी समय फाटक की ओर से तुमुल जयनाद सुनाई पड़ता है, जो वृज्जिसंघ के महामात्य के आगमन का सूचक है—अम्बपाली फिर अभिवादन कर वहां से चल देती है—

वैशाली का एक नागरिक आता और आनन्द के हाथों में वृज्जिसंघ के महामात्य का, आगमन के लिए आज्ञा चाहनेवाला, पुर्जा रख देता है···भगवान् बुद्ध का रुख देख स्वयं आनन्द उनकी अगवानी के लिए जाते हैं—

महामात्य चेतक के नेतृत्व में वैशाली के नागरिकों और नागरिकाओं का झुण्ड आ रहा है—उन्हें देखकर भगवान् बुद्ध भिक्षुओं को सम्बोधित करते हैं—]

भगवान् बुद्ध : भिक्षुओं, आपमें से जिन भिक्षुओं ने कभी देवताओं की परिषद् नहीं देखी है, वे वृज्जियों की इस परिषद् को ध्यान से देखें, उनका निरीक्षण करें और इसी से देवताओं की परिषद् का अनुमान करें।

[उन्हें निकट आया देख भगवान् बुद्ध उनके सम्मान में अपने आसन से खड़े हो जाते हैं—महामात्य चेतक और सभी नागरिक तथा नागरिकाएं भगवान् बुद्ध का अभिवादन करते हैं—फिर आनन्द सबको सम्मान के साथ यथायोग्य आसन पर बिठाते हैं—महामात्य भगवान् बुद्ध से कहते हैं—]

महा० चेतक : भगवान्, आपके शुभागमन से हमारा वृज्जिसंघ कृत-कृत्य हुआ, वैशाली पवित्र हुई। भगवान् ने इस बार अनिमन्त्रित ही पधार कर हमारे सौभाग्य को कितना बढ़ा दिया है ?

भगवान् बुद्ध : पहली बार मैं आपके निमन्त्रण पर आया था। लेकिन, एक बार यहां आने पर ही वैशाली मेरी अपनी नगरी हो चुकी; फिर निमन्त्रण की क्या ज़रूरत रही, महामात्य ! हां, इस बार मैं ही आपके नागरिकों को निमन्त्रण देने आया हूं।

महा० चेतक : भगवान् का आमन्त्रण ! हमें लज्जित न करें भगवान् ! हम आपके आमन्त्रण के नहीं, आज्ञा के पात्र हैं। आपकी जो आज्ञा होगी, हम उसे सिर आंखों पर लेंगे भगवान् !

भगवान बुद्ध : (मुस्कराते हुए) नहीं-नहीं, आमन्त्रण ही। मैं आप लोगों को विजय का आमन्त्रण देने आया हूं।

महा० चेतक . (आश्चर्य से) आमन्त्रण और विजय का ? भगवान्, हमारा संघ न किसी की विजय बर्दाश्त कर सकता है और न किसी की स्वतन्त्रता पर हाथ उठाता है। विजय तो तुच्छ राजतन्त्र वालों की घृणित आकांक्षा है। भगवान् हमारी जांच न करें; हमें धर्म का मार्ग बताएं।

भगवान् बुद्ध : (गम्भीर होकर) जिस धर्म में विजय की आकांक्षा न हो, उसे धर्म मत समझो, वृज्जियो ! धर्म के मानी ही है—अपने पर विजय प्राप्त करना, फिर संसार पर विजय प्राप्त करना।

महा० चेतक : अपने पर विजय तो समझा, किन्तु संसार पर ?

भगवान् बुद्ध : हां, संसार पर ! वह विजय क्या हुई, जो संसार पर न छाई। छोटे मन और संकुचित आकांक्षा को छोड़ो। अपना उद्देश्य महान् करो, अपनी दृष्टि ऊंची करो। फिर विजय-अभियान को निकलो। सारा संसार तुम्हारे पैरों पर आ झुकेगा।

महा० चेतक : यह विजय-अभियान हमारी समझ में नहीं आता, भगवान् !

भगवान् बुद्ध : समझ में नहीं आता ? (कुछ देर ध्यानस्थ होकर) अभी शायद वक्त नहीं आया है, महामात्य ! अभी तो विजय के मानी है हत्या, हिंसा, रक्तस्नान, अग्निकाण्ड, क्रन्दन, आर्त्तनाद ! यह विजय है या विनाश ? मैं जिस विजय की कल्पना करता हूं, वही यथार्थ विजय होगी, वृज्जियो ! इस विजय-अभियान के सैनिकों के हाथों में फौलाद की तलवार या गडे की खाल के ढाल के बदले एक हाथ में तालपत्र पर लिखी कुछ

पोथियां होंगी और दूसरे में भिक्षापात्र होगा। उनके शरीर पर जिरह-बख्तर न होकर (अपने लबादे की ओर इशारा करके) टुकड़े-टुकड़े चीथड़ों से बने, मिट्टी के रंग मे रंगे, पीले वस्त्र होंगे और उनके मुंह से दानवी जयनाद नहीं, विश्वकल्याणकारी श्रुति-मधुर पूत मन्त्र निकलकर दिग-दिगन्त को मुखरित करेंगे ! मैं कल्पना की आंखों से देख रहा हूं, हमारे सैनिक हिमाचल के दुर्गम शिखरों को रौंदते, समुद्र की उत्ताल तरंगो को कुचलते, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, चारों ओर फैल रहे है और ये जहा जाते हैं, उनका मुकाबला न होकर स्वागत हो रहा और वे देश-देश पर विजय करते जा रहे हैं ! (कहते-कहते बिलकुल ध्यानमग्न हो जाते हैं और उनके चेहरे से आभा निकलने लगती है)

महा० चेतक : (दीप्ति के आगे सिर भुकाते) भगवान् की कल्पना सत्य होगी, क्या इसमें भी किसी का कोई सन्देह हो सकता है ? और, इस विजय में हम वृज्जि भी अपना योग्य हिस्सा लेंगे—हमारी वैशाली अपना अर्घ्य अर्पित करने मे पीछे नहीं रहेगी, भगवान् इस पर विश्वास रखें।

भगवान् बुद्ध : वृज्जिसंघ तथागत को कितना प्रिय है, क्या वह सिर्फ शब्दों मे कहा जा सकता है ? तथागत के धर्म संघ के विधान का आधार तो संघ-राज्य से ही लिया गया है। वृज्जि इस धर्म-विजय में योग्य हिस्सा लेंगे और वैशाली ? मैं देख रहा हूं, जब तथागत के धर्म मार्ग पर कोई विवाद उठ खड़ा होगा, उसके निबटारे का सौभाग्य वैशाली को ही प्राप्त होगा; और जब युग के थपेड़ों ने इस महान् नगरी के धुर्रे उड़ा दिए होंगे, तब भी इसकी मिट्टी के दर्शन के लिए जम्बू-द्वीप के कोने-कोने से लोग आएंगे !

[वैशाली की इस महिमा को भगवान् बुद्ध के मुंह से सुनकर सभी वृज्जि पुलकित होते—गद्गद कण्ठ से महामात्य चेतक कहते हैं—]

महा० चेतक : भगवान् का आशीर्वाद हमारा सौभाग्य है। हम वृज्जि भगवान् के चिर-अनुगृहीत हैं ! हम इस आशीर्वाद के योग्य पात्र सिद्ध हों, यही हमारी आकांक्षा है। (अभिवादन करते हैं) खैर, अब एक निवेदन है !

भगवान् बुद्ध : बोलिए महामात्य !

महा० चेतक : मैं संघ की ओर से भगवान् को अतिथि-आवास में चलने और संघ का आतिथ्य स्वीकार करने का निमन्त्रण दे रहा हूं।
भगवान बुद्ध : संघ का निमन्त्रण तो हमेशा ही स्वीकृत है। किन्तु, क्या संघ अपनी एक नागरिका के आमन्त्रण का अपमान होने देगा?
महा० चेतक : नागरिका? आमन्त्रण?
भगवान् बुद्ध : अभी-अभी आर्या अम्बपाली आई थी और वह निमंत्रण की स्वीकृति भी ले चुकीं।
महा० चेतक : वह निमन्त्रण ही देने आई थीं?

[इसी समय पीछे आकर बैठे नागरिकों में एक बोल बैठता है।]

एक नाग० : तभी वह हम लोगों के रथ से अपने रथ की धुरी लड़ाती, बेतहाशा उड़ी जा रही थी। (सब उसकी ओर देखते हैं) मैंने पूछा, इतनी खुश क्यों आर्ये? तब वह मुस्कराकर बोली—भगवान् मेरे यहा जेवनार को जो आ रहे हैं। एक लक्ष मुद्रा लेकर यह सौभाग्य मुझे देने का मैंने निवेदन किया। किन्तु, उसने नाही कर दी!
महा० चेतक : एक लक्ष मुद्रा!
नागरिक : हां, महामात्य! वह हर्षोन्माद में कह बैठी—वैशाली की समस्त सम्पदा की कीमत पर भी यह सौभाग्य मैं नहीं दे सकती! वह तो फूली नहीं समा रही थी।
महा० चेतक : (जरा मुस्कराहट में) ओहो, अम्बा ने हमें हरा दिया।
भगवान बुद्ध : अम्बपाली साधारण नहीं है, महामात्य। वैशाली की कीर्ति में अम्बा की कीर्ति चार चांद लगा देगी, ऐसा मुझे स्पष्ट भास रहा है।

[सभी नागरिक भगवान् के मुह से अम्बपाली की यह प्रशस्ति सुनकर आश्चर्यचकित हैं—एक दूसरे का मुह देखने लगते हैं—महामात्य चेतक भगवान् बुद्ध का अभिवादन करके सभी नागरिकों के साथ प्रस्थान करते हैं—]

तीन

[अम्बपाली के विलास भवन का श्रृंगार— कक्ष— दीवारों पर तरह-तरह की रंगीन चित्रावली— ऊपर नीले रंग का चंदोवा टंगा, जिसमें जहां-तहां रत्नों के गुच्छे लटक रहे—मानों शरद-आकाश में प्रदीप्त तारे! नीचे जो हरे रंग की कालीन बिछी है, उसमें काढ़े हुए लाल कमल के फूल स्वच्छ जल वाले सरोवर में खिले कमल-पुष्प-से दीख पड़ते हैं—

कमरे की दीवार के बीच में उसी से सटा एक बड़े स्वर्ण दर्पण के सामने एक छोटा गद्दीदार मंच है—मंच के दोनों ओर श्रृंगार-प्रसाधन के अनेक सामान सोने-चांदी और हाथी दांत के छोटे-छोटे सन्दूकचों में रखे हैं—

मंच पर बैठी अम्बपाली दर्पण में अपने को देख रही है—तुरन्त स्नान करके वह आई है—बाल खुले हैं, जिन पर पानी की बूंदें चमक रही हैं—धानी रंग का परिधान है उसका—कंचुकी अभी पूरी कसी नहीं है। दर्पण में वह अपने इस रूप यौवन को एक टक देख रही —

थोड़ी देर दर्पण में देखने के बाद वह उठती और कमरे में टहलने लगती है—तस्वीरों को देखती, कभी सिहर उठती,कभी बुदबुदाती, फिर मंच पर आ बैठती है—दर्पण में उसकी रूप आभा चमक पड़ती है—

उसकी परिचारिका चयनिका कमरे में आती है—उसकी आहट सुन वह उसकी ओर मुड़ती और पूछती है—]

अम्बपाली : क्या है चुन्नी ?
चयनिका : आपने अभी तक प्रसाधन नहीं किया ?
अम्बपाली : न किया, न करूंगी।
चयनिका : हां, भगवान बुद्ध के जाने से हम सबका चित्त आज खिन्न है।
अम्बपाली : तेरा चित्त भी ?
चयनिका : भला !

अम्बपाली : क्यों खिन्न है, रे ?

चयनिका : क्यों न खिन्न हो, आर्ये ? इन दिनों कैसी धूमधाम रही यहां !

अम्बपाली : ठीक, हम सब धूमधाम चाहते है—हां, धूमधाम ! चाहे वह धूमधाम खेल-तमाशे का हो, नृत्य-गीत का हो, या भजन-प्रवचन का।

चयनिका : यह क्या कह रही हैं आर्ये ? कहां भगवान बुद्ध का यह दिव्य प्रवचन कहां तुच्छ खेल-तमाशे, नृत्य-गीत !

अम्बपाली : तुझे भगवान् के प्रवचन अच्छे लगे !

चयनिका : तो भला !

अम्बपाली : तब तू बूढ़ी हो चली ?

चयनिका : (चौंककर) मैं बूढ़ी ?

अम्बपाली : हां, हां, बूढी। सबसे दयनीय दृश्य वह होता है, चयनिके, जब बुढापा जवानी के शरीर में घुस जाता है। ऊपर जवानी के अंग, भीतर बुढापे का खून— मानों लाल सेब के नीचे सड़ी हुई गुद्दी !

चयनिका : छी, छी, यह क्या कहती हैं भद्रे ? मैं बूढ़ी नहीं हूं।

अम्बपाली : चुन्नी ! जब मन मे शृंगार की जगह विराग ले ले, खेल-तमाशे के बदले भजन-ध्यान अच्छा लगें, भीड़ से घबराकर जब आदमी एकान्त खोजे, संघर्ष पर जब शान्ति हावी हो जाय, तब समझ लेना चाहिए, बुढ़ापा आ गया। रंग-बिरंगे पट की जगह सब सादा श्वेत वस्त्र भाए, तब जान लो, आदमी ने कफन की ओर पैर बढ़ा दिए !

चयनिका : कफन की ओर ? मैं अभी मरना नहीं चाहती, आर्ये !

अम्बपाली : मरना नहीं चाहती है, तो जीना सीख। जीना भी एक कला है, चयनिके ! कुछ लोग जिन्दा भी मरे हुए हैं, कुछ मरकर भी जिन्दा रहेंगे।

चयनिका : कुछ मरकर भी जिन्दा रहेंगे, जैसे भगवान् बुद्ध। क्यों भद्रे ?

अम्बपाली : और अम्बपाली भी !

[चयनिका आश्चर्य से आंखें फाड़ती अम्बपाली की ओर देखती है]

अम्बपाली : (हंसती हुई) हां, हां, अम्बपाली भी। और, दो अमरों में

जब युद्ध होता है, वह कैसा भयानक दृश्य होता है, तूने देखा है, रे !

चयनिका : (घबराई हुई) युद्ध ?

अम्बपाली : हा, जब अम्बपाली और भगवान् बुद्ध में युद्ध हुआ।

चयनिका : आपमें और भगवान् में युद्ध ?

अम्बपाली : तू कैसी अन्धी है रे, कुछ देखा ही नहीं ? कई दिनों तक यह युद्ध चलता रहा है, कई दिनों तक दोनों ओर से अस्त्र चलते रहे हैं।

चयनिका : आप यह क्या कह रही हैं भद्रे ? भगवान् बुद्ध और अस्त्र ?

अम्बपाली : अगर भगवान् बुद्ध के पास शस्त्र नहीं है, तो वे विजयी कैसे होते है ? कैसे भरतखण्ड में उनका दिग्विजय का डंका बजता जा रहा है और क्या बिना अस्त्र के ही अम्बपाली ने वृज्जिसंघ पर विजय प्राप्त की है।

चयनिका : ये सब बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं, आर्ये !

अम्बपाली : अच्छा है, या तो आदमी में इतना ज्ञान हो जाय कि वह सब कुछ अच्छी तरह समझ ले, नहीं तो अज्ञान रहने में ही कल्याण है। ज्ञान-अज्ञान के बीच की चीज़ बड़ी खतरनाक होती है, चुन्नी।

चयनिका : अच्छा, तो इस युद्ध में हुआ क्या ?

अम्बपाली : हुआ यही कि न भगवान् मुझे पराजित कर सके, न मैं उन्हें पराजित कर सकी !

चयनिका : तो आप भगवान को पराजित करना चाहती थी ?

अम्बपाली : ज़रूर। हर आदमी, जिसमे कुछ कस-बल होता है, दूसरे को पराजित करना चाहता है। जिसमे जय की भावना न हो, समझ, उसमें कुछ है ही नहीं !

चयनिका : देवि, आप विचित्र नारी है ! (वह कांप उठती है)

अम्बपाली : भगवान् ने भी यही कहा था।

चयनिका : भगवान् ने ?

अम्बपाली : तूने अम्बपाली को क्या समझा है रे ! जिसके सामने रू-ब-रू देखने से उन्होंने अपने शिष्यों को मना किया, उन्हें आंख मूंदने को लाचार किया, वह अम्बपाली साधारण नारी है ? महान् ही महान् की महत्ता समझता है—अम्बपाली को भगवान ने ही पहचाना। (वह आत्म-

गौरव से फूल सी उठती है)

चयनिका : मैं इन बातों को क्या समझूँ ? खैर, देर हो रही है, आप प्रसाधन कर लें !

अम्बपाली : प्रसाधन नहीं करूँगी, यह तुझे पहले ही कह दिया है न ?

चयनिका : तो प्रसाधन क्यों नहीं करेंगी ?

अम्बपाली : क्योंकि इन प्रसाधनों की व्यर्थता तो कल-परसों मालूम हो ही गई ! जो अपना विजय न दिलाए, वह भाड़ में जाए। चयनिके, इन कुछ दिनों में प्रसाधन का एक भी साधन मैंने नहीं छोड़ा, लेकिन उफ़ ·····
(उसाँसें लेती है)

चयनिका : क्यों !

अम्बपाली (अचानक उसकी आवाज भर्रा जाती है, चेहरे पर विषाद की रेखाएँ खिंच जाती हैं) चयनिके, आह ! तू मेरी मनोव्यथा का अनुभव कर पाती ? अम्बपाली ने सोच रखा था, उसके अस्त्र अमोघ हैं, वह सब पर विजय प्राप्त कर सकती है। उसने अपने को दीपशिखा समझा था, जिस पर हर पुरुष को पतंगा बनकर गिरना पड़ेगा। लेकिन, यह क्या हुआ ? जब-जब वह उनके नज़दीक गई उसने पाया, उनके ज्योति-मण्डल के भीतर पहुँचते ही मानों उसकी शिखा लुप्त हो गई, वह ठण्डी पड़ गई, देखते-देखते बरफ़ बन गई। फिर, उस ज्योति की गरमी से, उसने महसूस किया, बरफ़ बनी वह पिघल रही है, पानी-पानी हो रही है। चयनिके ! जो कोई भी उनके नज़दीक जाएगा, वह उनमें अपने को, अपने 'आपा' को खोए बिना नहीं रह सकता !

चयनिका : आप सच कह रही हैं आर्ये !

अम्बपाली : लेकिन, अम्बपाली इतने सस्ते हार नहीं मान सकती थी ! ज्योंही गर्मी का असर होते देखती, वह वहाँ से भाग आती।

चयनिका : तो पराजय नहीं, पलायन तो हुआ !

अम्बपाली : हाँ, पलायन हुआ ! अम्बपाली को इसके लिए लज्जा भी है। लेकिन, यह पलायन उसने पराजय के प्रतीकार के लिए स्वीकार किया है। विजय को ध्यान में रखकर जो मौके पर पीछे हट जाते हैं, उनका पलायन पलायन नहीं है चयनिके ! अम्बपाली तब तक चैन नहीं लेगी,

जब तक वह भगवान् बुद्ध पर विजय नहीं प्राप्त कर लेती।
चयनिका : भगवान् बुद्ध पर विजय ? जिसे मार नहीं हरा सका ?
अम्बपाली : मार नहीं हरा सका, न हरा सकता था। आंधी, तूफान, अजगर, शेर—और, जब इनसे भयभीत-विचलित न हों, तब अप्सराएं, परियां—नहीं-नहीं, इन अस्त्रों से मार बुद्ध को नहीं हरा सकता था। ये उतने ही व्यर्थ हैं, जितने अम्बपाली के पिछले प्रसाधन।
चयनिका : तब ?
अम्बपाली : तब अम्बपाली को विश्वास है, वह उन अस्त्रों को खोज सकेगी, जिनसे भगवान् बुद्ध को पराजित कर दे। मैंने भगवान् से कह दिया है।
चयनिका : (आश्चर्य की अधिकता में चिल्लाती-सी) कह दिया है ?
अम्बपाली : हां, कह दिया है ! सुनकर वह मुस्कराए, बोले—राज-नर्त्तकी, वह दिन तथागत के लिए धन्य होगा, जब एक नारी यह समझ ले कि उसने उन पर विजय प्राप्त कर ली। (मुस्कराती है)

[इसी समय भूतपूर्व राजनर्त्तकी पुष्पगन्धा का प्रवेश होता है—बाल खुले, कन्धे से घुटने के नीचे तक एक सादा लबादा लटक रहा है—बुद्ध के उपदेशों का असर उसके चेहरे पर स्पष्ट है—अम्बपाली उसे देखते ही ससम्मान खड़ी हो जाती है—]

पुष्पगन्धा : लेकिन, इसका अर्थ तुमने समझा, अम्बे ! मैं सारी बातें सुन रही थी।
अम्बपाली : देवि, आपका यह वेश ?
पुष्पगन्धा : जैसा तूने अभी कहा है, कफन की तैयारी में यह सादा वस्त्र ! खैर, भगवान् की उस वाणी के मानी बता।
अम्बपाली : मानी ! मानी तो साफ है, देवि !
पुष्पगन्धा : भोली लड़की; एक ओर भृंग और कीट है, दूसरी ओर पतंग और दीपक। भृंग दूसरे कीड़े को, अपनी आवाज के सतत गुंजार से भृंग बना देता है। लेकिन, दीपक सिर्फ जलता रहता है और पतंग आप-से आप उस पर टूटते और अपने को दीपशिखा का एक अंश बना लेते हैं—मैं

उन पतंगो की बात नहीं कहती, जो जलने तो जाते है, लेकिन जलने से व्याकुल हो अधजले या मुर्दे होकर बाहर जा गिरते हैं !

अम्बपाली : (पिछले वाक्य के व्यंग्य से तड़प उठती-सी) आप इससे क्या निष्कर्ष निकालना चाहती हैं ?

पुष्पगन्धा : कीट से भृंग बनना। भृंग भी तो एक कीट है। सिर्फ रूप-परिवर्तन, शरीर परिवर्तन ! और, पतंग का ज्योतिशिखा बना जाना ! गुण का परिवर्तन, आत्मा का परिवर्तन ! अम्बपाली भी अमर है, लेकिन भृंग की कोटि की—उसकी विजय ज्यादा-से-ज्यादा उड़ान दे सकती है, गुंजार दे सकती है। किन्तु, भगवान् बुद्ध अमर है, दीपशिखा की कोटि के। जो बुद्ध पर विजय प्राप्त करना चाहेगा, उसे पतंग बनकर जलना होगा, ज्योति मे मिल जाना होगा, बुद्ध में मिलकर बुद्धत्व प्राप्त करना होगा—बुद्धत्व, निर्वाण भगवान् ने इस विजय के लिए तेरा आह्वान किया है, अम्बे ! समझी ?

अम्बपाली : मैं उनका धर्म ग्रहण नहीं कर सकती, आर्ये ! यह तो मेरी हार होगी। अम्बपाली हार नहीं स्वीकार कर सकती है !

पुष्पगन्धा : यह तेरी उम्र का तकाजा है, अम्बे ! काश, जिन्दगी की धारा, इतनी सीधी, सरल होती ! जब तक तू आम्रग्राम में थी, आज की अपनी जिन्दगी की तूने कल्पना भी की थी ? (रुक जाती है अम्बपाली चुप है) बोल, बोलती क्यों नहीं रे ! (आनन्दग्राम के उच्चारण-मात्र से ही अम्बपाली की आँखों में आंसू छलछला आते है) ओहो, तू तो आज भी बच्चों की तरह रुआंसी हो गई। यही जिन्दगी है, अम्बे ! आदमी सोचता कुछ है, हो जाता कुछ और है ! उस दिन तू अरुण, मधु और मौसी कह कर कितनी चिल्लाई थी ! आज वही अरुण···

अम्बपाली : (अरुण का नाम सुन व्याकुल हो, पुष्पगन्धा के मुंह पर हाथ ले जाती हुई) भद्रे, उसकी चर्चा न करें—आह ! (लम्बी उसाँसे लेती है)

पुष्पगन्धा : हमारी पूरी जिन्दगी ही एक लम्बी आह है, अम्बपाली !

चार

[वैशाली का पार्श्वभाग — राजपथ से दूर फैला एक विस्तृत मैदान — मैदान के बीच एक मौलिश्री का सघन पेड़—पेड़ के नीचे चबूतरा बना — चबूतरे पर पेड़ के तने से पीठ टेके अरुणध्वज वंशी बजा रहा है—वह बहुत दुबला हो चला है; काला पड़ गया है—उसके रूखे बेतरतीब बाल उड़ रहे हैं—

चबूतरे की दूसरी ओर मधूलिका बैठी तागे से कुछ बुन रही है — उसके सूखे, भर्राए चेहरे पर आंसुओं की सूखी रेखाएं और दाग स्पष्ट हैं—

गरमी के दिन हैं, शाम का वक्त — एक युवती और दो नागरिक उस ओर से पगडण्डी पकड़े गुजरते हैं—वंशी की आवाज से खिंचकर, धीरे-धीरे वे उस पेड़ के निकट पहुंचते—अरुण इन लोगों की ओर से लापरवाह, अपने में तल्लीन, वंशी बजाता जाता है—थोड़ी देर में उसकी वंशी रुक जाती है—]

एक नागरिक : क्यों भाई, बन्द क्यों कर दिया ? थोड़ा बजाओ।

(अरुण उन्हें घूर-घूर कर देखता रह जाता है)

प० नागरिक : थोड़ा और बजाओ, भाई ?

दू० नागरिक : कैसी करुण रागिणी ? मैंने ऐसी वंशी आज तक नहीं सुनी थी।

अरुणध्वज : यह आपकी चापलूसी है या दिल्लगी ?

प० नागरिक : वैशाली के नागरिक न चाटुकार होते हैं, न अशिष्ट है।

दू० नागरिक : हमें अपनी कला-मर्मज्ञता पर नाज है, युवक ! सचमुच तुम अपूर्व बजाते हो !

अरुणध्वज : अपूर्व !

दू० नागरिक : हां, हां, अपूर्व ! !
अरुणध्वज : *(मुस्कराता) ओहो, मैं अपूर्व बजाता हूं ! बताऊं ?*
दोनों नागरिक : जरूर, जरूर !
अरुणध्वज : लेकिन, किसके लिए बताऊं ?
प० नागरिक : इसके मानी ?
अरुणध्वज : वंशी, मर्द बजाता है, औरतें सुनती हैं। अनन्त काल से यही होता आया है। कृष्ण ने बजाई, गोपियों ने सुनी। गोपियों ने और गायों ने भी। गायें तो आप हो नहीं सकते, फिर··· (वह हंस पड़ता है)
दू० नागरिक : यह तो तुम्हारी अजीब बात है, भाई !
अरुणध्वज : सभी सच बातें अजीब लगती हैं, क्यों श्रीमतीजी ? (युवती से वह पूछता है, वह कुछ नहीं बोलती है)
प० नाग० : *(युवती की ओर लक्ष्य करके) इनके कहने से बजाओगे ?*
अरुणध्वज : यह कह नहीं सकतीं।
प० नाग० : क्यों ?
अरुणध्वज : (मुस्कराता हुआ) यही हमेशा से होता आया है। औरतें सुनती हैं, कहती नहीं।
दू० नाग० : कहती नहीं ?
अरुणध्वज : ऊंहूं (सिर हिलाता है) *यही तो स्त्रीत्व है।* कहती नहीं लेकिन सुनती हैं, और कभी वंशी की आवाज पर नाचती रही हों, अब तो सिर्फ रोती हैं—क्यों मधु ?

[अरुण मधूलिका की ओर देखता है—वह सुने जा रही है—यह सुनकर उसकी पपनियों पर ओस की कणिकाएं चमक उठती हैं—]

प० नाग० : यह तुम्हारी कौन होती हैं ?
अरुणध्वज : (युवती की ओर देखते हुए) और, यह आपकी कौन होती हैं।
युवती : मुझे इन कांटों में मत घसीटिए ?
अरुणध्वज : (नागरिकों की ओर) समझा, यह नारी बोल रही है—'मुझे कांटों में मत घसीटिए !' 'मुझे कांटों में मत घसीटिए !' (युवती से) लेकिन श्रीमतीजी, इस मधु से पूछिए, क्या यह मेरे पीछे-पीछे अपने-

आपको कांटों में घसीट रही है ? (मधूलिका से) मधु, तू मुझे छोड़—इस श्रीमती के साथ जा, भाई जा। (नागरिकों से) आप इसे लेते जाइए। यह भी वृज्जिसंघ की नागरिका है।

युवती : *यह मेरा अहोभाग्य हो कि मुझे आप लोगों का आतिथ्य करने का सुअवसर मिले।*

अरुणध्वज : (युवती से) फिर नारी बोली ! आतिथ्य !············ अहोभाग्य ! लेकिन, आप लोग तो सिर्फ वंशी सुनना चाहते हैं, अच्छा सुनिए !

दू० नाग० : वैशाली के नागरिकों का द्वार अतिथियों के लिए हमेशा खुला है—आपको हमारा सादर निमन्त्रण है।

अरुणध्वज : तो वंशी नहीं सुनिएगा ?

दोनों नाग० : नहीं, नहीं—ऐसी बात नहीं। सुनाइए, सुनाइए।

[अरुण वंशी बजाने लगता है—युवती और दोनों नागरिक मुग्ध होकर वंशी सुनते जाते हैं—

वंशी की कोमल काकली को दबोचती-सी रथ की घर्र-घर्र आवाज सुनाई पड़ती है—सबका ध्यान सुदूर के राजपथ पर जाता है—मीनकेतन पताका को देखकर एक नागरिक कहता है—'ओहो, देवी अम्बपाली का रथ है'—अम्बपाली का नाम सुनते ही अरुण चौंककर उठ खड़ा होता है और वंशी पटक उस ओर भागता है—मधूलिका उसके पीछे लगती है—युवती और दोनों नागरिक आश्चर्यचकित हो वहां से चल देते हैं—

थोड़ी देर में अरुण को पकड़े मधूलिका आती है—दोनों चबूतरे पर बैठ जाते हैं—]

मधूलिका : अब वैशाली छोड़ो, घर चलो।

[अरुण कुछ नहीं बोलता—कातर दृष्टि से मधूलिका का मुंह देखता रहता है—]

मधूलिका : मैंने क्या कहा, सुना ? घर चलो, वैशाली छोड़ो।

अरुणध्वज : (भर्राई आवाज में) 'वैशाली छोड़ो', 'घर चलो'—हमारा

घर कहां है, मधु ?

मधूलिका : (आंचल से आंसू पोछती) नहीं-नहीं, अब वैशाली छोड़ना होगा।

अरुणध्वज : 'वैशाली छोड़ना होगा !' (कुछ याद करता-सा) क्यों मधु, क्या यह वैशाली है ?

मधूलिका : तो क्या यह आनन्दग्राम है ?

अरुणध्वज : (उसकी आंखें चमक उठती हैं) आनन्दग्राम ! हमारा आनन्दग्राम ! वह वेगवती का कलकल, वह आम्रवाटिका मे पक्षियों का कलरव ! हां, हां, चल, रे मधु, चल। आम की डाल में झूला डालेंगे, सब झूलेंगे—मैं झूलूगा तू झूलेगी, अम्बा झूलेगी। (अपने ही मुंह से अचानक निकले 'अम्बा' शब्द से विक्षिप्त-सा होकर) अम्बा ! अम्बा ! अम्बा किधर गई, मधु ? उफ् ! (झटपट खड़ा हो जाता है और चारों ओर भौंचक देखता है)

मधूलिका : (रोती हुई) तुम होश नही करोगे ?

अरुणध्वज : होश ! क्या मैं होश में नही हूं, मधु ? सच ? मैं होश में नही हूं ?

मधूलिका . मैं अब जहर खाके रहूंगी !

अरुणध्वज : (आंखें फाड़ती-सा) जहर खा लेगी ?

मधूलिका : (रुलाई-से) हां, जहर खा लूंगी, मर जाऊंगी, झंझट खत्म! मुझसे यह सब नही देखा जाता।

अरुणध्वज : (कुछ सभलता-सा करुण भाव-से) जहर खा लेगी, मर जाएगी ? तू मर जाएगी ! तो मेरा क्या होगा, मधु ? मुझे कौन देखेगा ? उफ् ! मैं होश मे नही रहता। तू मत मर मधु ! तू जहर मत खा मेरी मधु···

मधूलिका : दूसरा चारा क्या है, तुम कुछ सुनते ही नही ?

अरुणध्वज : सुनता नही हूं, यह मत कह मधु ! देखा नही, अभी किस तरह रथ का घर्र-घर्र सुन लिया और सुन लिया उस नागरिक का कहना कि देवी अम्बा···

मधूलिका : और अम्बपाली का नाम सुनते ही दौड़ पड़े पागल की-

तरह ! उन लोगों ने क्या समझा होगा भला ?
अरुणध्वज : क्या समझा होगा रे ?
मधूलिका : समझा होगा कि हम लोगों का अम्बपाली से कुछ-न-कुछ सरोकार जरूर है। जरूर कोई रहस्य की बात है ?
अरुणध्वज : (कातर भाव से) तो क्या अम्बपाली से हमारा कोई सरोकार नहीं है ?
मधूलिका : (दृढ़ता से) कभी था, अब नहीं है !
अरुणध्वज : (उत्तेजित होकर) नहीं है ! सरोकार नहीं है ! अम्बपाली से सरोकार नहीं—उफ् अम्बे···

[वह पागल-सा चिल्लाता है—मधूलिका उसके मुंह पर हाथ रख देती है—मुंह पर हाथ रखते ही वह चिल्लाना तो बन्द कर देता है, लेकिन उसकी आंखों से अजस्र अश्रुपात होने लगता है—मधूलिका की आंखों से भी आंसू झरने लगते हैं—दोनों एक दूसरे का चेहरा गौर से देखते हैं—दोनों सिर झुकाकर चुप हो रहते हैं—फिर मधूलिका कहती है—]

मधूलिका : यह क्या कर रहे हो, अरुण !
अरुणध्वज : यह क्या कर रहा हूं, मधु ! आह ! मैंने क्या कर दिया मधु ! मधु, यह मुझे क्या हो जाता है, रे ! ओह ! (वह विह्वल-सा हो जाता है—जैसे उसे अपने पर पश्चात्ताप हो रहा हो)
मधूलिका : प्रेम के मानी अमर्यादा नहीं है अरुण ! कृष्ण और राधा को देखो। गोकुल और मथुरा में कितनी दूरी थी ? एक योजन से भी कम ! क्या राधा वहां नहीं जा सकती थी ? लेकिन, वह नहीं गई ! अपनी ओर से एक दूत भी नहीं भेजा ! क्यों !
अरुणध्वज : क्यों ?
मधूलिका : क्योंकि वह जानती थी कि कृष्ण की हैसियत बदल गई है। वह जिस स्थान पर बैठे है, उस स्थान के उपयुक्त एक गोपी का प्रेम नहीं। राधा ने प्रेम नहीं छोड़ा, तो मर्यादा भी नहीं छोड़ी ! रोती रही, तड़पती रही, विसूर-विसूरकर जवानी गंवा दी, आंसुओं की बाढ़ में जिन्दगी बहा दी, लेकिन कृष्ण के पास एक पाती नहीं भेजी। हां, जब कृष्ण ने उद्धव को

भेजा, तब उनका सखा जानकर, जो कुछ कहना था, उसी से कहा। मर्यादा इसको कहते हैं—प्रेम की महिमा यह है। और तुम ? तुम तो पागल बने बैठे हो ! दौड़कर यहां पहुंचे और अब यहां ये खुराफातें !

अरुणध्वज : (संजीदा होकर) खुराफातें—हां, हां, मधु, मैं खुराफातें करता रहता हूं—उफ् !

मधूलिका : तुम्हीं सोचो न, यह खुराफात नहीं तो क्या है ? यहां आए, अच्छा। जब-जब उसकी झलक देख लिया करते हो, यह भी सही। लेकिन, यों दौड़ पड़ना, चिल्ला उठना—क्या अम्बा या तुम्हारे, किसी के लिए शोभन है ? अब अम्बा राजनर्त्तकी है, उसकी एक मर्यादा है। उस मर्यादा की रक्षा करना क्या तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं ? तुम्हें ऐसा काम करना क्या मुनासिब है, जिससे उसके पद-गौरव पर धक्का लगे। तुम्हें तो गर्व होना चाहिए कि जिसे तुमने चाहा, आज दुनिया उस पर मर रही है। जिसका सिर तुम्हारे चरणों पर अवनत था, उसके चरणों पर आज हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट लोटते हैं !

अरुणध्वज : ओहो, हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट ! उस दिन अम्बा ने भी कहा था—'अरुण, हज़ार-हज़ार····· !!!' (वह एकदम आंखें मूंद लेता है)

मधूलिका : फिर वही ? तुम नहीं समझोगे—मुझे ज़हर खाना ही पड़ेगा।

अरुणध्वज : (आंखें खोलता, दीनता से) मधु, मधु !

मधूलिका : मधु, मधु क्या ? तुम ठीक से रहो। अपने होश पर काबू करो और अपनी सारी वेदना, सारी व्याकुलता को इसी वंशी की तान में घोल दो। वेदना जब संगीत बन जाए, व्यथा जब रागिणी का रूप धारण करे, प्रेम की सार्थकता तब सिद्ध होती है, अरुण !

अरुणध्वज : 'वेदना जब संगीत बन जाए, व्यथा जब रागिणी का रूप धारण करे, प्रेम की सार्थकता तब सिद्ध होती है !' ठीक, ठीक मैं न अब चिल्लाऊंगा, न दौड़ूंगा, सिर्फ वंशी बजाऊंगा ! सिर्फ वंशी बजाऊंगा ! लेकिन, तब तू ज़हर नहीं खाएगी न मधु ! (मधूलिका की आंखों से आंसू गिरते देख) तू फिर रो रही है ?

मधूलिका : हां, रो रही हूं ! (आंसू पोंछती) मर्द जब गम में होता है, वंशी बजाता है; नारी जब गम में होती है, आंसू बहाती है।

अरुणध्वज : नारी जब गम में होती है, आंसू बहाती है। मधु, क्या अम्बा भी रोती होगी ?

मधूलिका : उसमें जो नारी है, वह जरूर रोती होगी, जार-जार आंसू बहाती होगी। किन्तु, वह बेचारी तो राजनर्तकी की मर्यादा में बंधी है न ? उसका दिल भले ही रोए, उसका हृदय भले ही हाहाकार करे, किन्तु उसे अपने चेहरे पर हंसी ही रखना है, अपने मुंह से फूल ही बरसाना है। हम-तुम तो अपनी पीड़ा को रो-गाकर कम कर लेते हैं, लेकिन, सोचो तो उसकी हालत—भीतर रोना, बाहर हंसना !

अरुणध्वज : भीतर रोना, बाहर हंसना ? सचमुच, यह अजीब बात है मधु !

मधूलिका : अजीब ही नहीं, अलौकिक ! इसे सिर्फ अम्बा-ऐसी असाधारण नारियां ही निभा सकती हैं ! (करुणा-भरी मुस्कान के साथ) कैसी अद्भुत घटना ! एक ही गम के तीन रूप—तुम बजाओ, मैं रोऊं और अम्बा हंसे !

तीसरा अंक

एक

[राजगृह—चारों ओर पर्वत-श्रेणियां—वृक्षों से हरी-भरी पर्वत-श्रेणियों के ऊपर जरासन्ध के बनाए विशाल प्रस्तर-प्राचीर के धूसर अंश दीख रहे हैं—इस प्राचीर पर जगह-जगह बुर्जियां बनी हैं, जिन पर तीर-कमान लिए सैनिक पहरे दे रहे हैं—

पर्वत श्रेणियों के बीच बसा राजगृह का विशाल नगर—चौड़ी सड़कें, ऊंची अट्टालिकाएं—राजपथ के दोनों ओर तरह-तरह की दूकानें—खरीद-फरोख्त का बाजार गरम—

नगर के बीच मगध का राजप्रासाद—भव्य, दिव्य, वितृत, विशाल—प्रासाद की आखिरी मंजिल पर अजातशत्रु का एकान्त कक्ष—जबसे वह बौद्ध हुआ है, इसी हिस्से में राजकाज के बाद रहता है यहां से गृध्रकूट-शिखर स्पष्ट दिखाई पड़ता है, जहां भगवान बुद्ध राजगृह आने पर ठहरते हैं—

कक्ष के सामने की छत पर वह व्याकुल होकर टहल रहा है—लगभग चालीस साल की उम्र···अंग-अंग की मांसपेशियां और पुट्ठे कसे हुए—चेहरे पर चेचक के दाग, जो उसके लाख चेष्टा करने पर भी भयंकरता का आभास दे ही देते हैं—खाली सिर—खुले बाल गरदन तक लटक रहे हैं—गरदन से पैर तक पीले रंग का लबादा लटक रहा—

बार-बार उसकी नजर गृध्रकूट की ओर जाती है—फिर गृध्रकूट से हटते ही उसकी नजर उसके हाथ में रखी, तलहथी के आकार की, हाथी दांत पर बनी तस्वीर पर जाती है—तस्वीर देखते ही सांस जोर से चलने लगती है—पैर तेजी से उठने लगते हैं—

उसका उपमन्त्री सुनीथ, उस समय नीचे से छत पर आता है—यह

अजातशत्रु का उपमन्त्री ही नहीं, उसका प्रिय सखा भी है—दोनों लंगोटिया यार, आपस में कोई दुराव नहीं···

सुनीध कुछ देर तक अजातशत्रु की यह भाव-भंगिमा देखता है, फिर बोलता है···]

सुनीध : यह क्या रो रहा है सम्राट् ! एक बार गृध्रकूट को देखना··· फिर तलहथी की ओर टकटकी लगाना ! किसी ज्योतिषी ने क्या फिर कोई नई भाग्यरेखा बताई है ?
अजातशत्रु : (मुड़कर) ओहो, सुनीध ! भले आए। नई भाग्यरेखा नहीं, यह देखो (तस्वीर दिखाता है)।
सुनीध : यह तो अम्बपाली है।
अजातशत्रु : तुमने कैसे पहचाना ?
सुनीध : अगर इतनी जानकारी न रखूं, तो सम्राट् के मन्त्रित्व की जिम्मेवारी कैसे निभा सकूंगा। जिसने हमारे पुराने शत्रु लिच्छवियों और विदेहो पर जादू डाल रखा है, जिसे पाकर सारा वृज्जिसंघ अपनी वैशाली को अलका की प्रतिद्वन्द्विनी मानने लगा है, उसे न पहचानूं ?
अजातशत्रु : अपूर्व सुन्दरी है यह, सुनीध ! वृज्जियों को इस पर घमण्ड करने का पूरा हक है।
सुनीध : गंगा के उस पार की भूमि में ही कुछ ऐसी खूबी मालूम पड़ती है सम्राट् ! सीता, उर्मिला, अहल्या, अम्बपाली—एक-से-एक रूप-गुणवती नारियां वहां पैदा होती आई हैं ! सम्राट् अपनी मातृश्री की याद करें—सम्राज्ञी देवी चेल्लाना का वह दिव्य रूप, अलौकिक सौन्दर्य, अपूर्व तेज···

[अपनी मां की इस चर्चा से अजातशत्रु व्याकुल हो जाता है—यहां इसकी चर्चा आवश्यक नहीं कि उसने अपने पिता को कैद कर लिया था और उसकी मां, बेटे की इस क्रूरता पर तड़प-तड़पकर मर गई थी—]

अजातशत्रु : (बीच ही में रुककर) बस, बस, तुम फिर भूल कर रहे हो, सुनीध ! मैंने बार-बार मना किया, माता-पिता की याद मुझे मत दिलाओ। मेरी कोई माता नहीं, कोई पिता नहीं। मैं आदमी नहीं, उल्का

हूं—आप-से-आप आसमान से गिरा हूं—खुद जल रहा हूं—दूसरों को जलाता हूं, जलाऊंगा (दीर्घ उच्छ्वास लेकर घूमने लगता है)

सुनील : (उसके नजदीक जाकर) क्षमा कीजिए, सम्राट् !

अजातशत्रु : सुनीध, मैं तुम्हारी योग्यता का कायल हूं, तुम्हारे ऐसे सखा पर मुझे नाज है। लेकिन याद रखो; इस गलती का दुहराना मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता। समझे ?

सुनीध : सम्राट् ! (सिर झुकाता है)

अजातशत्रु : (शान्त होकर) अच्छा, तुमसे एक मर्म की बात कहनी है, सुनीध !

सुनीध : कहने की जरूरत नहीं सम्राट् ! क्या मगधपति की मुखाकृति की रेखाएं ही पुकार-पुकार कर उनके मर्म के अन्तर्द्वन्द्व की घोषणा नहीं कर रहीं ? लेकिन—

अजातशत्रु : 'लेकिन' क्या ?

सुनीध . धृष्टता के लिए फिर क्षमा चाहते हुए निवेदन यह है सम्राट कि मगधराज के लिए क्या यह शोभनीय है कि उनका दिल ऐसा कच्चा महल हो, जो उनके शत्रुओं की एक सुन्दरी के रूप-जादू से घरौंदा-सा भहरा पड़े।

अजातशत्रु : (मुस्कराते हुए) घरौंदा-सा भहरा पड़े ! तुम्हें सावधान करने का अधिकार है, सुनीध ! (अचानक गम्भीर होकर) लेकिन, तुमसे छिपाना क्या है ? आज तक मैं अपने को पहचान नहीं सका ! एक अजीब उच्छृंखलता मेरे मन में घर किए हुए है, जो रह-रहकर यों उमड़ती है कि...... (अपने दाहिने हाथ से बायें पंजे को जोर से मरोड़ता है)

सुनीध : वड़ों में मन की चंचलता क्या वांछनीय है, सम्राट् !

अजातशत्रु : चंचलता ? इतना छोटा-सा नाम उसे मत दो, मेरे प्रिय सखा ! जिसके वश होकर मैंने पिता से विद्रोह किया, उन्हें बन्दी बनाया, पितृहन्ता कहलाया, तड़प-तड़पकर माताजी मरीं, हजारों नर-नारियों की निर्मम हत्या कराई, और आज भी नहीं कह सकता कि मुझसे कब, कहां, क्या हो जाएगा—उसे तुम सिर्फ चंचलता नहीं कह सकते।

सुनीध : साधारण पुरुषों में जो चंचलता होती है, महान् व्यक्तियों में वही

उच्छृखलता के रूप में प्रकट होती है। दोनों का उद्गम एक है; स्रोत एक है; दोनों एक चीज है। जो गंगा मगध में आकर इतनी विशाल हो गई है; हिमालय की तलहटी में छोटी निर्झरिणी ही तो थी ?

अजातशत्रु : लेकिन, मेरे मन में जो है, उसकी सही कल्पना के लिए तुम्हें ऐसा सोचना पड़ेगा कि मगध की गंगा अपनी पूरी विशालता के साथ हिमालय की तलहटी में प्रखरतम वेग से गिर रही है—विशालता और प्रखरता का वह उद्दाम सम्मिश्रण ही मेरी इस उच्छृंखलता की समता कर सकती है, सुनीध ! काश, मेरा हृदय मगध की गंगा की तरह शान्त और समथर हो पाता।

[गृध्रकूट की ओर टकटकी लगाकर देखता, कुछ मन-ही-मन पढ़ता और सिर नवाता है—]

सुनीध : ठीक, सम्राट् ठीक। ऐसे मौके पर भगवान् बुद्ध ·····

अजातशत्रु : (बीच ही में रुककर) भगवान् बुद्ध ? सुनीध, सोचा था, भगवान् बुद्ध की शरण में आने पर इस उच्छृंखलता पर विजय प्राप्त करूंगा। चेष्टाएं की और असफलता भी मिल रही थी। अपने पर बहुत कुछ काबू कर लिया था। लेकिन, यह छोटी-सी तस्वीर ने सारा किया-कराया बण्टाधार कर दिया !

सुनीध : इसका प्रतीकार सहज है। मन को कड़ा कीजिए ! इस तस्वीर को फेंक दीजिए, तोड़ दीजिए, जला दीजिए। आपसे नहीं होता तो लाइए इधर। (हाथ बढ़ाता है)

अजातशत्रु : (मुस्कराता हुआ) कैसा सहज प्रतीकार ! —फेंक दीजिए, तोड दीजिए, जला दीजिए ! सुनीध ! इधर एक सप्ताह से इसी उद्देश्य से इस तस्वीर को निकालता हूं। मन कड़ा करने के लिए राजवस्त्र को त्याग यह पीला लबादा ओढ़ता हूं। लेकिन, ज्योंही तस्वीर हाथ मे लेता हूं, हाथ कांप उठता है। हाथ कांपता है, जोर से मुट्ठी बांधता हूं। हृदय डगमगाता है, गृध्रकूट की ओर देखता हूं और इन सारे प्रयत्नों के बावजूद इस आठवें दिन भी तस्वीर जहां-की-तहां है और न जाने मेरे पैर कहां-से कहां खिसककर चले गए !

सुनीध : यह कोई अच्छी बात नहीं है, सम्राट् !
अजातशत्रु : अच्छी बात नहीं है, यह क्या समझाओगे तो समझूंगा ! लेकिन, अब तो मगध की गङ्गा गोमुखी का बांध तोड़कर निकल चुकी। अब कोई ऐरावत उसे रोक नहीं सकता, कोई जानु उसे सोख नहीं सकता। जिस तरह अनेक गलतियां हो चुकी, एक गलती और करूंगा।
सुनीध : लेकिन; सोचिए सम्राट्, जो घटनाएं दुर्भाग्यवश घट चुकीं, उसके बाद कोई वृज्जिनारी अब मगध की पटरानी बनना भी स्वीकार कर सकती है ?
अजातशत्रु : नारियां स्वयं आती नहीं है, लाई जाती हैं।
सुनीध : जिसका नतीजा हम लंका में देख चुके हैं। वृज्जियों में ही तो विदेह भी हैं। उनकी नारियों में एक अलौकिकता है सम्राट् ! उन पर जबरदस्ती किया जाना कभी सुफल नहीं लाता। क्या बन्दरों की सेना बन सकती है ! क्या समुद्र बांधा जा सकता है ? क्या सोने का महल लाह के ऐसा धधक सकता है ? लेकिन, एक अलौकिक नारी के चलते ये सब अलौकिक बातें होकर रहीं।
अजातशत्रु : लेकिन अजातशत्रु भी एक अलौकिक पुरुष है, सुनीध !
सुनीध : क्या यह दर्प की वाणी नहीं है, सम्राट् !
अजातशत्रु : (गुस्से से उसका चेहरा लाल हो जाता है···सिर हिलने लगता है) सुनीध, सुनीध, तुम बहक जाया करते हो। तुम मेरे सखा हो, किन्तु तुम्हें याद रहना चाहिए कि सम्राट् हमेशा ही सम्राट् है। और, मगध-सम्राट् की यह आज्ञा अचल-अटल है कि वैशाली पर हमें विजय-प्राप्त करनी ही है—अम्बपाली को राजगृह लाना ही है।
सुनीध : सम्राट् की आज्ञा हमारे सिर पर (वह सिर झुकाकर अपनी भक्ति प्रकट करता है) वैशाली पर तो हमें विजय प्राप्त करनी ही है। वृज्जियों ने इधर अजीब धमाचौकड़ी मचा रखी है। अपने संघबल पर उन्हें इतना घमण्ड हो गया है कि उन्होंने मस्तिष्क का सन्तुलन तक खो दिया है। गंगा पर चलने वाले हमारे बजरों से वे कर वसूलते हैं, उन्हें लूटते हैं। गंगा पार कर वे हमारे गांवों और छावनियों पर छापा मारते हैं। उन्हें रोकने के लिए हमने जो पाटलिग्राम बसाया है, उसे ध्वस्त-

पस्त किए रहते हैं। वैशाली पर विजय प्राप्त करना तो अनिवार्य है, सम्राट् !

अजातशत्रु : मैंने आज महामन्त्री वस्सकार को भगवान् बुद्ध के पास इसी काम में सलाह लेने को भेजा है—मैं उनकी प्रतीक्षा में ही हूं। (गृध्र-कूट की ओर नजर उठाता है)

सुनीध : महामन्त्री तो इसके लिए कब से न तैयारियां कर रहे हैं। गंगा किनारे की छावनियों को दुरुस्त किया है, जंगी बेड़ों का पुन.संगठन किया है, नये अस्त्र-शस्त्र बनवाये हैं, सेना का भी नवीन संगठन किया है, यहां तक कि राजधानी के परकोटे की मरम्मत तक को नहीं छोड़ा है। साम्राज्य का सौभाग्य है कि उसे वस्सकार-से महामन्त्री मिले हैं।

अजातशत्रु : तुम्हारा कहना बिलकुल सही है।

[उसी समय मगध का महामन्त्री वस्सकार पहुंचता है—एक-दम बूढ़ा—सभी बाल सन-से सुफेद—चेहरे पर झुर्रियों के साथ कूटनीतिज्ञता की छाप—आगे के दो दांत टूटे, जिससे आवाज में विकृति—बुढ़ापे के कारण उसका सिर रह-रहकर हिल उठता है—अजातशत्रु उससे पूछता है—]

अजातशत्रु : क्यों महामन्त्रीजी, भगवान् ने क्या कहा ?

वस्सकर : मैंने आपसे कहा था न, भगवान् बुद्ध को वृज्जियों से स्वाभाविक अनुराग है। और, मैं कहूं, उनके लिए उनमें पक्षपात भी है !

अजातशत्रु : महामन्त्री !

वस्सकर : मगध का महामन्त्री अपनी जिम्मेदारी समझते हुए बोलता है, सम्राट् ! ज्योंही मैं उनके पास गया और उनसे सम्राट् का सन्देश कहा, वह आनन्द से पूछने लगे—

"क्यों आनन्द, क्या वृज्जियों की परिषद् बार-बार बैठती और उसमें भरपूर उपस्थिति होती है ?

"क्या वृज्जि इकट्ठे जुटते, इकट्ठे उठते और इकट्ठे अपने राष्ट्रीय कर्तव्यों को पूरा करते है !

"क्या वृज्जि बाकायदा कानून बनाए बिना कोई आज्ञा जारी नहीं

करने और न बने हुए नियमों का उच्छेद करते हैं ?

"क्या वृज्जि वृद्ध-बुजुर्गों का सम्मान करते और उनकी सुनने लायक बातों को सुनते और मानते हैं ?

"क्या वृज्जि अपनी कुमारियों पर ज़ोर-जबरदस्ती नहीं करते और उनकी कदर और इज्जत करते हैं ?

"क्या वृज्जि अपने चैत्यों, मन्दिरों और समाधियों की रक्षा करते हैं ?

"क्या वृज्जि अर्हतों और तपस्वियों का आदर-सत्कार करते हैं ?"

और, इनका उत्तर आनन्द से 'हां' में सुनकर वह तमककर बोल उठते, "तो आनन्द, वृज्जियों की उन्नति होगी, उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकेगा !"

अजातशत्रु : *(उसकी भवों पर बल पड़ जाते हैं, वह तमतमा कर बोलता है)* ? ऐसा तो महामन्त्री, आपने भगवान से क्यों नहीं कह दिया कि ये वृज्जि चाहे जितने समृद्ध हों, चाहे इनका जितना प्रभाव हो, मैं इन्हें उखाड़ डालूंगा, नष्ट कर दूंगा ! जब मगध की गंगा गोमुखी से चल चुकी, तब बीच में कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती ? (क्रोध में वह घमने लगता है)

वस्सकार : मगध के सम्राट् के अनुकूल ही यह वचन है। लेकिन, क्या मगध के महामन्त्री का काम साधु-तपस्वियों से शास्त्रार्थ करना ही रह गया है ? भगवान् को कहने दीजिए, मैंने वैशाली-विजय की सारी तैयारियां कर रखी हैं, और उनके कथन से जिस सूत्र का पता चला, उसका भी निवारण कर लेना है।

अजातशत्रु : कौन-सा वह सूत्र है ?

वस्सकार : भगवान् बुद्ध का कहने का तात्पर्य सिर्फ यह था कि वृज्जियों में कुछ ऐसी एकता और निष्ठा है कि वे जीते नहीं जा सकते। अब मैं उस एकता को तोड़ूंगा, निष्ठा को भ्रष्ट करूंगा। मैंने उसके लिए राह भी सोच ली है !

अजातशत्रु : कौन-सी राह है वह, महामन्त्रीजी !

वस्सकार : बहुत ही सीधी-सी राह। मैं कल दरबार में वृज्जियों का

प्रसंग उठाऊंगा और उनकी बड़ी तारीफ करूंगा। आप इसके लिए मुझे खूब फटकार बतायेंगे। मैं इसके बावजूद, दो दिन बाद, वृज्जियों के पास गुप्त रूप से प्रेमोपहार भेजूंगा। आप उस दूत को पकड़वा लेंगे। पकड़ कर मुझे राजद्रोही घोषित कीजिए, अपमानित कीजिए, मेरा सिर गंजा कराइए और मुझे मगध से निष्कासन की सजा दीजिए—बस, आपको सिर्फ इतना ही करना है, बाकी मैं कर लूंगा !

अजातशत्रु : (चकित होकर) सिर गंजा करना ! महामन्त्री, नहीं-नहीं, मुझसे यह नहीं होगा।

वस्सकार : (हंसकर) गंजे सिर का प्रभाव देश पर कितना बढ़ रहा है, शायद सम्राट् ने इस पर ध्यान नहीं दिया है। और मुझे इस काम में जल्दी करनी है। भगवान् बुद्ध के वैशाली जाने के पहले ही मुझे अपना जादू जगाना है—कौन जाने, अपनी स्वाभाविकता अनुरक्ति के कारण भगवान् उन्हें हमारी मंशा की खबर न कर दें ?

अजातशत्रु : महामन्त्रीजी, यह क्या कह रहे हैं आप ?

वस्सकार : सम्राट ! भावुकता और राजधर्म साथ-साथ नहीं चला करते।

दो

[वैशाली की अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी—इसके पवित्र जल से पुज्जियों का राज्याभिषेक होता, अतः दूसरे के लिए इसके स्पर्श तक की सख्त मुमानियत—चारों ओर सख्त पहरे पड़ रहे हैं—इसके जल में विहार करने वाले पक्षी बाहर न जाएं इसके लिए पानी के ऊपर लोहे का जाल लगा—

इस पुष्करिणी की शोभा का क्या कहना? सरोवर में श्वेत, नील, लाल कमल खिले हुए—कमलों पर भौंरों का गुंजार—जहां-तहां जल-पंछी किलोल कर रहे—जहां-तहां भावुक-युवतियों का नौका-विहार—

सान्ध्य भ्रमण के लिए आए वैशाली के नागरिकों और नागरिकाओं का जमघट—कोई टहल रहा है, कोई पक्के घाट के संगमरमर के चबूतरे पर बैठा है, कोई बादलों के साथ डूबते हुए सूरज की आंखमिचौनी देख रहा है, तो कोई कमलों पर उनकी किरणों का खिलवाड़ निरख रहा है—कहीं-कहीं गपशप भी चल रही है—

एक चबूतरे पर महामन्त्री वस्सकार अकेला बैठा है—भिक्षुकों-सा वेश है उसका—सिर के बाल मुड़े, पीला लबादा तन पर, हाथ में एक सुमरनी—उसका ध्यान न सरोवर पर है, न अस्ताचलगामी सूरज पर, न बादलों पर—वह टहलनेवाले नागरिकों में से एक-एक को घूरता है—जैसे उनके चेहरों को पढ़ने की कोशिश कर रहा है—बीच-बीच में सुमरनी तेजी से घुमाता वह बुदबुदा उठता है—

एक नागरिक को अकेला, सिर नीचा किए, टहलता देखकर वह उसके निकट जाता है—उस नागरिक की कमर से लम्बी तलवार लटक रही है, पीठ पर ढाल है—उसके चेहरे से अभिमान और औद्धत्य टपक रहा है—]

वस्सकार : क्यों, आर्य अश्वसेन, आप उदास क्यों दीखते हैं?

अश्वसेन : अहो, मगध के महामन्त्री, नमस्ते।

वस्सकार : नमस्ते आर्य ! आपके चेहरे पर यह उदासी क्यों है ?

अश्वसेन : (आश्चर्य से) उदासी ? उदासी कहां है ? यों ही कुछ सोच रहा था। कहिए, आपको वैशाली कैसी पसन्द आ रही है ?

वस्सकार : (आनन्द से) वैशाली ? त्रिभुवन-सुन्दरी नगरी ! क्या कहना है ! (बनावटी उदासी लाकर उसांसें लेता है)

अश्वसेन : (उत्तेजित स्वर में) हां, हां, उस नरपिशाच अजातशत्रु ने इस वैशाली-प्रेम के कारण आपके साथ जो क्रूर व्यवहार किया है, क्या हम वृज्जि उसे भूल सकते हैं ? हम इसका बदला एक दिन उससे चुकाकर रहेंगे।

वस्सकार : आह ! वह दिन मुझे देखने को मिलता !!

अश्वसेन : मिलेगा, जरूर मिलेगा। आपका अपमान वृज्जिसंघ के हर नागरिक के दिल में कांटे-सा चुभ रहा है। आपको देखकर किस के हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला नहीं धधक उठती ? किसकी आंख से खून के आंसू नहीं टपकने लगते ? उफ् ! उसने आपके सिर के बाल तक मुंड़वा डाले ! नरपिशाच !!

वस्सकार : नरपिशाच तो है ही। खैर, उसने बाल मुंड़वा दिए, अच्छा ही किया। मैं भगवान् बुद्ध की शरण के समीप तो हो गया। (अपने गंजे सिर पर हाथ फेरता है) अब सिर्फ भिक्षापात्र की कमी है ! (ऊपर देखकर कुछ मन्त्र बुदबुदाता है)

अश्वसेन : भिक्षापात्र नहीं, शासनसूत्र ! जब तक आपके हाथ में मगध का शासनसूत्र नहीं आ जाता, हम चैन न लेंगे। खैर, मजे में आप हैं न ? कोई कष्ट तो नहीं !

वस्सकार : वैशाली में कष्ट (कुछ रुककर) लेकिन, मैं अब सोचने लगा हूं, वैशाली आकर मैंने अच्छा नहीं किया।

अश्वसेन : ऐसा क्यों मन्त्रिवर ?

वस्सकार : जिसकी पूजा आदमी करे, उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है। दूरत्व हमारी श्रद्धा को मजबूत करता है, निकटता तो उचाट-सी ला देती

है। 'अतिपरिचयादवज्ञा'......

अश्वसेन : तो वैशाली से आपका जी उचट रहा है।

वस्सकार : उचाट ही कहिए। यहां कुछ चीजें ऐसी देख रहा हूं, जिससे सोचता हूं, यहा न आना ही ठीक होता। आदमी जिसके साथ हृदय की गहराई से प्रेम करता है, उसमें तनिक-सी भी त्रुटि देखना पसन्द नहीं करता।

अश्वसेन : आपने यहां कोई त्रुटि देखी है क्या ?

वस्सकार : जाने दीजिए इन बातों को। लकड़ी पर रन्दा देने से वह चिकनी होती है। बात पर रन्दा देने से व खड़ी ही होती है। आह ! कहां भगवान् बुद्ध के मुह से वह तारीफ और कहां वैशाली के नागरिकों का यह...... (बड़ी लम्बी सांस लेता है और गरदन जोरों से हिलाने लगता है)

अश्वसेन : यह, यह क्या, बोलिए !

वस्सकार : मत कहलाइए मुझसे आर्य; जाने दीजिए। आइए, हम-आप भी बैठकर सन्ध्या का यह मनोरम दृश्य देखें, जिस तरह सब देख रहे हैं। जिन्दगी मे बहुत चीजों के भूल जाने में ही कल्याण है, आर्य !

अश्वसेन : नही, नहीं, आपको कहना पड़ेगा।

वस्सकार : (सिर ऊपर उठाकर) भगवान् बुद्ध, तुम्हारी शतशः प्रशंसित नगरी की यह दशा ! (अश्वसेन से) कहूं, आप नाराज तो नही होंगे ?

अश्वसेन : आप पर नाराज ? यह क्या बोल रहे हैं, मन्त्रिवर !

वस्सकार : मुझ पर ! मेरी तो आप गरदन भी काट लें, तो मैं सौभाग्य समझू। वैशाली के एक नागरिक के हाथ से मृत्यु पाने से बढ़कर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है, आर्य ?

अश्वसेन : तो क्या बात है ?

वस्सकार : अच्छा सुनिए, लेकिन, फिर प्रार्थना है, नाराज मत होइएगा। इसी शर्त पर कह रहा हूं (उगली दिखाते हुए) आप उन्हे पहचानते हैं ? ...

अश्वसेन : कौन वह ? वह तो वसुबन्धु हैं।

वस्सकार : आपसे उनका कोई झगड़ा है ?

अश्वसेन : झगड़ा ! वैशाली के नागरिक आपस में नहीं झगड़ते।

वस्सकार : कोई खानदानी दुश्मनी ?

अश्वसेन : आप यह क्या कह रहे हैं ?

वस्सकार : इसीलिए न कहा कि जाने दीजिए, मुझसे मत पूछिए। नहीं, नहीं, मुझे वैशाली छोड़ देना चाहिए और किसी अरण्य में जाकर जप-तप करना चाहिए। भगवान् बुद्ध ! जल्द मुझे अपनी शरण में ले लो। (झट ध्यानमग्न होने का बहाना करता है, फिर किसी अलक्षित शक्ति को नमस्कार करता-सा दीखता है)

अश्वसेन : महामन्त्री, आपको यह रहस्योद्घाटन करना ही होगा।

वस्सकार : नहीं, नहीं, मैं परदेश में हूं। मुझे इन झंझटों में नहीं पड़ना चाहिए। मैं आपसे कहूं, आप उनसे पूछें, वह फिर मुझसे पूछें। यों बातें बढ़े, एक विषाक्त वृत्त तैयार हो। अब दुनिया की झंझटों में मुझे नहीं पड़ना है—जाने दीजिए इन बातों को।

अश्वसेन : इसमें पूछताछ का कहां सवाल उठता है, महामन्त्री ? वैशाली के नागरिक अपने उन महान् अतिथि की बात आंखें मूंदकर मानेंगे, जो उन्हीं के लिए इतनी पीड़ा पा रहे हैं। आप कहिए।

वस्सकार : तो आप धीरज से सुनें, गुस्सा मत हों। न जाने, वसुबन्धुजी को आपसे कौन-सी खानदानी दुश्मनी या व्यक्तिगत अनबन है !…

अश्वसेन : (बीच में ही बात काटकर) मैंने आपको पहले ही कह दिया कि मुझसे उनकी किसी तरह की दुश्मनी या अनबन नहीं है।

वस्सकार : तो क्या उनका कहना ठीक है ?

अश्वसेन : क्या ?

वस्सकार : भगवान् बुद्ध ! तुम्हीं को साक्षी रखता हूं, मेरी जिह्वा ठीक वे ही बातें कहे, जिन्हें कानों से सुना है। काश ये बातें झूठी होतीं !

अश्वसेन : (झुंझलाकर) यह क्या पहेली बुझा रहे हैं, महामन्त्री ? मैं बच्चा नहीं हूं !

वस्सकार : मैं कहता हूं, एक बच्चा भी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह भी इसे सुनकर कहने वालों की आंखें झपट्टा मारकर निकाल लेना चाहेगा। आदमी अपनी बहादुरी पर लानत शायद बर्दाश्त भी कर ले, परन्तु अपने खानदान पर······(दांत से जीभ काटता है) :

अश्वसेन : बहादुरी पर लानत! खानदान पर······ऐं (उसकी भवों पर तेवर चढ़ जाते हैं)

वस्सकार : मैंने पहले कहा था, क्रोध मत कीजिए, पहले धैर्य से सुनिए। वीर सुनने में भी धैर्य रखते हैं, जल्दी तो बदला लेने में की जाती है!

अश्वसेन : (गुस्से से) क्या वसुबन्धु ने मुझे गाली दी है?

वस्सकार : आर्य अश्वसेन, मैं तो इसे गाली से भी बुरी चीज समझता हूं। किसी को कायर कह देना, फिर उसकी कायरता को खानदानी बताना —किसी के मरे हुए बाप-दादों की पगड़ी उछालना, राम, राम!

अश्वसेन : (उत्तेजना में तलवार खींच लेता है) बोलिए, मन्त्रिवर, उसने क्या कहा! आज यह तलवार उसके सिर पर नाचेगी।

वस्सकार : आह! इसी तलवार पर तो बात चली। कल उनसे मेरी बातें हो रही थीं। मैंने आपकी चर्चा की—कहा, तीर तो सभी चला सकते हैं, लेकिन तलवार के हाथ में अश्वसेनजी का मुकाबला कोई नहीं कर सकता।

अश्वसेन : (फख से) आपने सही कहा, महामन्त्री! वृज्जिसंघ में मेरी तलवार का मुकाबला कोई नहीं कर सकता।

वस्सकार : मैंने खुद देखा है—विजयोत्सव के दिन आपके हाथ के जो करतब देखे, क्या उन्हें कभी भूल सकता हूं। लेकिन देखिए; वसुबन्धुजी की हिमाकत! आपकी तारीफ मेरे मुंह से सुनते ही चिल्ला पड़े···

अश्वसेन : जल्दी कहिए, वह क्या बोला? (तलवार हिलाता है)

वस्सकार : (ऊपर देखते) भगवान् बुद्ध! मुझसे सच ही कहलाना। (अश्वसेन से) वह चिल्लाकर बोले, अश्वसेन तलवार क्या चलाएगा, वह तो कायर है! यही क्या, उसकी सात पुश्त···(रुककर) माफ कीजिए, कहते मुझे शर्म आती है, गुस्से से मेरा बूढ़ा शरीर भी कांप उठता है। (शरीर कंपाने लगता है)

अश्वसेन : काफी है महामन्त्री, अब यह देखे कि मैं बहादुर हूं या कायर; और स्वर्ग में जाकर मेरे बाप-दादों से भी आजमाइश कर ले !

(अश्वसेन तलवार घुमाता उस ओर दौड़ता जो रहा है कि वह रोकने की बनावटी चेष्टा में कहता है—)

वस्सकार : सुनिए, सुनिए !
अश्वसेन : नहीं, नहीं, मैं सुन नहीं सकता ! उसने मेरे खानदान···
वस्सकार : आपना सोचना ठीक है, कोई भी योग्य सन्तान अपने खानदान का अपमान बर्दाश्त नहीं कर सकती ! जो बर्दाश्त करे, वह इन्सान नहीं है। लेकिन सुनिए···
अश्वसेन : नहीं, नहीं—

[वह वसुबन्धु की ओर तेजी से दौड़ पड़ता है—वसुबन्धु प्राकृतिक दृश्यों को देखने में तल्लीन है—उसके पास जाते ही वह बोल उठता है—'उठो, संभलो, तलवार निकालो'—अकारण अपनी मानसिक आनन्द-प्राप्ति में बाधा पड़ते देख वसुबन्धु भी कुछ क्रोध में आ जाता है, कहता है—]

वसुबन्धु : यह तुम क्या बक रहे हो ?
अश्वसेन : बक रहा हूं ? उलटे कहते हो, बक रहा हूं ! (गरज कर) सम्भलो तलवार निकालो ! (तलवार उसके सिर पर उठाता है)
वसुबन्धु : क्या पागल हो गए हो ?
अश्वसेन : मैं पागल ! पागल हूं, तो लो—संभलो, एक···दो··· तीन—

[वह तलवार चलाता है—वसुबन्धु हाथ उठा कर तलवार रोकना चाहता है—तलवार लगते ही उसका हाथ कट कर दो टूक हो जाता है —हाथ को काट उसकी खोपड़ी पर तलवार गिरती है। एक चीख के साथ वह जमीन पर गिर जाता है—खून का फव्वारा चलने लगता है—

उसके गिरते ही, चक्रकार, जो अलग खड़ा तमाशा देख रहा था, वहां से गायब हो जाता है—चीख सुन कर नागरिक उधर दौड़ते हैं और अश्वसेन को पकड़ लेते हैं—थोड़ी देर हलचल रहती है—फिर घायल वसुबन्धु और अपराधी अश्वसेन को लेकर लोग संथागार की ओर रवाना हो जाते हैं—सरोवर के घाटों पर सन्नाटा छा जाता है—

झुटपुटे के अन्धकार में अम्बपाली दिखाई पड़ती है—उसके परिधान में सादगी है—जूड़े पर, हाथों में कुछ फूल के गहने—गले में फूल की हल्की माला—उसके पीछे चयनिका है—अम्बपाली चबूतरे पर बैठकर, उदास मुद्रा में कहती—]

अम्बपाली : वैशाली के अच्छे दिन नहीं दीखते, चयनिके ! आज जो कुछ हुआ, वह हमारे लिए खतरे की घण्टी है।

चयनिका : हां, भद्रे ! वैशाली में ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा गया।

अम्बपाली : मुझे तो इस घटना के पीछे किसी के अदृश्य हाथ दिखाई पड़ते हैं। वैशाली के नागरिक अपनी तलवार अपने भाइयों के सिर पर चलाएँ, यह महान आश्चर्य की बात है !

[उसी समय वृज्जिसंघ के महामात्य चेतक दिखाई पड़ते हैं—गोरे रंग का, लम्बा वृद्ध पुरुष—सफेद दाढ़ी, सिर से सफेद बालों की लटें कन्धे तक लटक रही—कन्धे से घुटनों तक एक सफेद लबादा—चिन्ता से ओतप्रोत है उनका चेहरा—वह अम्बपाली की बातें सुन रहे थे—प्रकट होकर कहते हैं—]

महामात्य चेतक : आपका कहना बिलकुल सही है, आर्ये !

अम्बपाली : (ससम्भ्रम खड़ी होती हुई) महामात्य, आज यह क्या हो गया ?

महामात्य चेतक : यह आज नहीं हुआ है, इसके लिए कुछ दिनों से क्षेत्र तैयार किया जा रहा था, देवि !

अम्बपाली : कुछ दिनों से ?

महामात्य चेतक : हां, देवि ! वैशाली के जीवन-सरोवर में एक गन्दी

मछली घुस आई है, हमारे नागरिकों के सम्मिलित परिवार की टोकरी में एक सड़ी नारंगी आ गई है—पानी जहरीला बन रहा है, एक-एक नारंगी सड़ती जा रही है !

अम्बपाली : उस मछली को निकाल डालिए, उस नारंगी को फेंक दीजिए—आप हमारे महामात्य हैं; आपको सब अधिकार है।

महामात्य चेतक : यह गणतन्त्र की दुर्बलता है। आप जानते हुए भी तब तक कुछ नहीं कर सकते, जब तक बहुमत को आप पक्ष में न कर लीजिए। और जो बुरे हैं, वे भले से कहीं ज्यादा काइयां होते न हैं।

अम्बपाली : यह अजीब बात !

महामात्य चेतक : हां, अजीब बात होने पर भी यथार्थ बात यही है। (**कुछ ठहर कर, बड़ी ही गम्भीरता से**) मेरा माथा तो उसी दिन ठनका, जिस दिन सुना कि मगध के महामन्त्री वैशाली का पक्ष लेने के लिए निकाल दिए गए हैं और वह वैशाली आ रहे हैं। मन्त्री का पद कोई दरबान का पद नहीं कि आप जिसे आज रखें, कल निकाल दे सकें। योग्यता की सर्व-श्रेष्ठता और भक्ति की पराकाष्ठा ही किसी को उस महान पद पर पहुंचा सकती है और वहां पहुंचकर आदमी राज्य की इतनी गुप्त बातें जान जाता है कि ऐसा मौका आ गया, तो उस पद से हटाने के बाद उसे दुश्मन के घर में जाने का मौका तो दिया ही नहीं जा सकता है। दण्डित मन्त्री का स्थान फांसी का तख्ता होगा या कैदखाने की काल कोठरी—देशनिष्कासन की गलती तो की ही नहीं जा सकती !

अम्बपाली : (आश्चर्य में) तो आपको शंका है, मगध के महामन्त्री का इसमें हाथ है ?

महामात्य चेतक : शंका नहीं, निश्चय है। जब वह वैशाली आए, हमारे नागरिकों के आनन्द की सीमा न रही। परमहितैषी, हार्दिक मित्र मानकर उनका धूमधाम से स्वागत हुआ। लोगों में आनन्द का ऐसा ज्वार आया था कि वे बुद्धि की बात सुन नहीं सकते थे। मैंने इसमें खतरा देखा, उनके पीछे गुप्तचर रखा। गुप्तचर ने जो खबरें दी हैं, उनका प्रत्यक्ष प्रमाण भी आज हमें मिल गया।

अम्बपाली : (**आश्चर्य में आंखें फाड़ती**) अरे !

महामात्य चेतक : हां, बड़ी चालाकी से उन्होंने जाल बिछाया है। मान लीजिए, दो नागरिक बड़े दोस्त हैं, आपस में घुल-घुलकर बातें कर रहे हैं। उसी समय उसमे से एक को वह अलग बुलायेंगे, यह कह कर कि एक जरूरी बात दरियाफ्त करनी है, और उसे बुलाकर महज मामूली बात पूछेंगे—'क्योंजी, लोग खेत जोतते हैं?' 'आज आपने दाल कौन-सी खाई? आप कितने भाई हैं?' आदि। लेकिन, ये बातें भी इस संजीदगी से करेंगे कि उनका साथी सोचेगा, महामन्त्री से कुछ गहरी, महत्वपूर्ण बातें हो रही हैं। उनके मन में सन्देह पैदा होगा। और, जब उसका साथी पहुंचकर यह कहेगा कि मगध के महामन्त्री ने सिर्फ ये मामूली बातें की हैं, उनका सन्देह पक्का हो जाएगा ··दोनों का दिल टूटेगा, मैत्री वैर में परिणत हो जाएगी!

अम्बपाल : (कांपती हुई) चालाकी की हद है।

महामात्य चेतक : यही नहीं, धनी-गरीब, ऊंच-नीच, वीर-कायर आदि तरह-तरह के भेद-भाव के सवाल उठाकर वह हमारी एकता को छिन्न-भिन्न करने पर तुले हुए हैं। इस हत्याकाण्ड के ठीक पहले आर्य अश्वसेन से उनकी बातें हो रही थीं—जरूर उन्ही के उकसाने से यह काण्ड हुआ है!

अम्बपाली : और, देखने में कितने साधु लगते हैं, हमेशा बुद्ध भगवान का नाम लेते हैं!

महामात्य चेतक : ऐसे लोगों का साधुपन उनका ढाल होता है, और भगवान का नाम उनकी तलवार! सीधा शिकार सिर्फ शेर करता है, और सभी जानवर, जिनका आदमी सिरताज है, हमेशा आड़ लेकर निशाना लेते हैं, भद्रे!

अम्बपाली : महामात्य, संघ का भार आपके सिर है। ऐसे आदमियों से संघ को बचाना आपका कर्त्तव्य है। आप इन्हें गिरफ्तार क्यों नहीं करा लेते?

महामात्य चेतक : अगर आज मैं इन्हें गिरफ्तार कराऊं, वृज्जिसंघ में हलचल मच जायगी। यह शहीद बन जाएंगे। इनका पक्ष और विपक्ष लेकर आन्दोलन खड़ा होगा। और इसके बाद अजातशत्रु जरूर हमारे देश पर चढ़ दौड़ेगा। मुझे खबर मिली है, वह इसके लिए तैयारियां भी कर

रहा है।

अम्बपाली : (आश्चर्य से) क्या वह वैशाली पर चढ़ाई करने वाला है।

महामात्य चेतक : मुझे खबर तो यहां तक मिली है कि उसने इसके लिए पाटलिग्राम के निकट सेनाएं इकट्ठी कर रखी हैं, गंगा पार करने के लिए बेड़े तैयार कर लिए हैं और अब सिर्फ उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में है।

अम्बपाली : आह ! देवपुरी वैशाली ! इस पर राक्षस का शासन होगा ? इसे बचाइए, महामात्य ! (व्याकुल-सी हो जाती है)

महामात्य चेतक : मैं इसके लिए सयत्न हूं; पर आपकी जिम्मेवारी भी इस बारे में कम नहीं है, आर्ये ! जो काम अधिकार से नहीं किया जा सकता, वह प्रेम से आसानी से कराया जा सकता है। आपके पास नौजवानों का दिन-रात प्रवेश है। आप उनकी ओर ध्यान दीजिए। नीति से कला का असर ज्यादा होता है। और, वह कला व्यर्थ है, जो मातृभूमि के, संकट काल में, काम न आए। आप अपनी कला का उपयोग इस काम में करें। अगर नौजवानों का हृदय ठीक रहे, उनमें पारस्परिक एकता और प्रेम हो, उनमें आदर्श पर उत्सर्ग होने की भावना बनी रहे, तो फिर उस देश या जनपद को कोई भी पराजित नहीं कर सकता।

अम्बपाली : आपने सही कहा, महामात्य ! आपकी आज्ञा सिर-आंखों पर। कुछ दिनों से मैं व्याकुल-सी थी—मेरा यह सौन्दर्य, यह कला, क्या सिर्फ मनोरंजन की चीज है ? तुच्छ मनोरंजन ! ! ···

महामात्य चेतक : मनोरंजन तुच्छ चीज नहीं है भद्रे ! मनोरंजन जिन्दगी की एक अहम जरूरत है। जहां मनोरंजन नहीं, वहां जीवन नहीं। आपके द्वारा वैशाली की तरुण पीढ़ी जीवन पाती रही है—जिन्दादिली ही जिन्दगी है, भद्रे ! लेकिन, हर चीज के उपयोग पर सामयिकता की छाप होनी चाहिए। आग रोशनी देती है, जलाती भी है। कला सुलाती है, तो जगाती भी है। अपने नागरिक जीवन के गोरखधन्धों में परेशान नागरिकों को आज तक आपने नृत्य और संगीत की मधुर नींद दी—क्षीण शक्ति के पुनः संचय के लिए मौका दिया। लेकिन, आज सतत जाग्रत रहने का समय है। आज उसी कला को जागरण का शंखनाद करने दीजिए।

अम्बपाली : (गर्व-मिश्रित स्वर में) ऐसा ही होगा, महामात्य ! अम्बपाली सिद्ध कर देगी, वह गौरी ही नहीं, दुर्गा भी है। वह सोहनी ही नहीं, भैरवी सुना सकती है।

महामात्य चेतक : (आशीर्वादात्मक ढंग से हाथ उठाते) तथास्तु।

तीन

[वैशाली का संथागार और उसके सामने का विस्तृत मैदान—; संथाकार के गुम्बदों से शंख और भेरी की ध्वनि हो रही है—

अजातशत्रु की सेना वैशाली पर चढ़ाई करने को आ रही है, उसी का सामना करने के लिए नागरिकों का यह आह्वान किया जा रहा है—

इस ध्वनि को सुनकर धीरे-धीरे नागरिक मैदान में आते हैं—लेकिन उत्साह का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता—न जयनाद है, न भुजाओं की उछाल—एक दूसरे को यों देख रहे हैं, जैसे पुराने वैर चुकाने का मौका मिला हो—एकाध जगह उत्साह की तरंग देखी भी गई, एकाध बार जयनाद भी हुआ, तो वह निराशा के गहरे गर्त में तुरन्त विलीन हो गया—

संघ के महामात्य चेतक संथागार से निकलकर सभामंच पर आते हैं और नागरिकों को देखते हैं—देखते ही उनका चेहरा उतर जाता है—भराई आवाज में नागरिकों को सम्बोधित करते हैं—]

महामात्य चेतक : नागरिको, क्या आपको मालूम है, यह शंख क्यों फूंका गया है, यह भेरी क्यों बजाई गई है? हमारे वृज्जिसंघ के पुराने शत्रु अजातशत्रु ने हम पर चढ़ाई की है।

एक नागरिक : क्यों, अजातशत्रु हम पर चढ़ाई करेगा?

दूसरा नागरिक : चढ़ाई की है, तो उससे हमारा क्या?

तीसरा नागरिक : क्या हमारी तरफ से उसे छेड़ा गया है?

महामात्य चेतक : बस, बस नागरिको! मैं आज का समां देख कर ही दंग हूं। यही वैशाली है, संथागार और उसका मैदान है। शंखनाद होते ही वैशाली के घरों में कोई भी नौजवान नहीं रहता था। सभी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित यहां इकट्ठे हो जाते थे। तीसरी बार भेरी बजते-न-बजते इस

विस्तृत मैदान में तिल धरने की जगह नहीं रह जाती थी। नागरिकों के जयनाद, शस्त्रों की झनझन, घोड़ों की हीस और हाथियों का चिग्घाड़ से आसमान गूंज उठता था। सब कहते थे, संघ पर क्या संकट आया ? सब पूछते थे, संघ का कौन दुश्मन है ?—हम उसका शमन करेंगे, हम उसकी आंख निकाल लेंगे। और आज वही वैशाली—आह वैशाली ! (उसका गला भर आता है)

एक नागरिक : लेकिन, हमें पूछने का हक है ?

दूसरा नागरिक : हमें युद्ध का औचित्य तो मालूम होना चाहिए।

तीसरा नागरिक : हिंसा मानवीय कर्त्तव्य नहीं, यह राक्षसी वृत्ति है।

[ऐसे सवालों को सुनकर कुछ नागरिक, जिसमें जोश और उत्साह था, लेकिन उमड़ा न था, तमतमाकर खड़े होते हैं—लेकिन बोलने के पहले ही महामात्य चेतक हाथ के इशारे से उन्हें रोक देते हैं और शान्त भाव से कहते हैं—]

महामात्य चेतक : नागरिकों, गणतन्त्र के मानी ही यह है कि हर नागरिक राज्य के कामों में अपने को हिस्सेदार समझे—अपनी जिम्मेवारी निभाए, संघ के पदाधिकारियों से जिम्मेवारी वसूल करे। किन्तु, आज तो अजीब सवाल पूछे जा रहे है। संघ ने युद्ध नहीं छेड़ा है कि आप उससे औचित्य का उत्तर मांगें। युद्ध का औचित्य पूछना है, तो आप अजातशत्रु से पूछें—इसीलिए तो संघ ने आपका आह्वान किया है। लेकिन याद रखिए, चढ़ाई करने वाले दुश्मन से आप जबान से नहीं पूछ सकते, ऐसी जबानों को वह तराश लेगा। आक्रमणकारी एक ही जबान समझता है, वह है प्रत्याक्रमण में उठाई गई तलवार की झनझन या चलाए गए तीर की सनसन।

[महामात्य के इस कथन पर उत्साही दल में और जोश आ जाता है, उनमें से नागरिक उठ कर कहने लगते हैं—]

एक नागरिक : हम तलवार की जबान से ही उसे समझायेंगे।

दूसरा नागरिक : हम उसे उसकी गुस्ताखी का मजा चखायेंगे।

तीसरा नागरिक : बोलो, वृज्जिसंघ की जय। गणतन्त्र की जय! वैशाली की जय!

[जयजयकार करनेवालों की संख्या बढ़ती जाती है—चारों ओर हलचल और सरगरमी दिखाई पड़ती है—जिस नागरिक ने पहले विरोध की आवाज उठाई थी, वह आगे बढ़ता, रंगमंच के निकट जाता और नागरिकों को सुनाकर कहता है—]

पहला नागरिक : महामात्य, क्या मुझे नागरिकों को सम्बोधित करने की आज्ञा मिल सकती है?

महामात्य चेतक : निश्चय ही! संघ ने सब नागरिकों को बोलने-चालने का समान अधिकार दे रखा है। बोलिए।

पहला नागरिक : नागरिक भाइयों, हमें अपने गुण पर नाज है, अपने संघ पर नाज है। अपनी प्यारी वैशाली और प्यारे वृज्जिसंघ पर आए संकट को टालने के लिए जो योग न दे, उसकी जिन्दगी पर लानत! (कुछ नागरिक उत्साह में 'वृज्जिसंघ की जय' चिल्लाते हैं—वह तमक कर कहता है) ठहरिए, अधीर मत होइए, बुद्धि से काम लीजिए। अगर वृज्जिसंघ और वैशाली प्यारी चीज है, तो आदमी की जान भी कम कीमती नहीं। आदमी की जान संसार में सबसे कीमती चीज है—सबसे प्यारी। इसीलिए हम दूसरे की जान लेने और देने के पहले थोड़ा सोच लें।

एक नागरिक : तुम कायर हो!

प० नागरिक : महामात्य, गालियों को रोकिए; किसी को हक नहीं कि वह दूसरे को कायर कहे—

[चारों ओर उत्तेजना का वातावरण—महामात्य हाथ के इशारे से उन्हें शान्त करते—]

महामात्य चेतक : नागरिकों, आप धैर्य न खोयें। इन्हें पूरी बात कहने दीजिए। (पहले नागरिक से) आप जारी रखें—

प० नागरिक : मैं कह रहा था, जो काम हम करने जा रहे हैं, उस पर

जरा गौर से सोच लें। हम अपने गण पर, अपने संघ पर, अपनी वैशाली पर अपने को बलिदान करने जा रहे हैं। वैशाली या वृज्जिसंघ क्या है; अगर वह एक आदर्श का प्रतीक नहीं हो। इस आदर्श के निर्माण के लिए हमारे पूर्वजों ने क्या-क्या नहीं किया ? उसी आदर्श को देखकर भगवान् बुद्ध ने हमें देवता कहा था। लेकिन, वह आदर्श आज कहां है ? हम उस उज्ज्वल आदर्श को खोकर जमीन पर ढकेले गए देवता-ऐसे हो गए हैं। हमारे नागरिक एक दूसरे की निन्दा करते हैं, एक दूसरे से मन छिपाते हैं, एक दूसरे की बुराई चाहते हैं, एक दूसरे को कायर कहते हैं—भिखमंगा बनाते हैं—

(कई ओर से आवाजें आती हैं) —'यह झूठी बात है, बिलकुल झूठ', 'नहीं-नहीं, सही बात', 'उस दिन तुमने मुझे भिखमंगा बताया', 'तुमने मुझे कायर कहा', 'वीर लड़ें, हम कायर क्यों लड़ें ?', 'भिखमंगे क्यों लड़ें,' 'जिन्हें धन बचाना है, लड़ें', 'तुम्हारी जबान कट जाय', 'तुम्हारी जिन्दगी पर लानत !'

महामात्य चेतक : (ऊंची आवाज में) शान्त नागरिकों, शान्त ! (पहले नागरिक से) आपको जो कुछ कहना है, जल्दी कहिए—

पहला नागरिक : भाइयो, मैं इस नाजुक मौके पर ज्यादा वक्त नहीं लेना चाहता। सिर्फ एक बात कहूंगा। एक तरफ तो यह हालत, दूसरी ओर दुश्मन को देखें। आप जानते हैं, मगध-सम्राट् अजातशत्रु अब पुराना अजातशत्रु नहीं रह गया है। अब वह भगवान् बुद्ध का अनुयायी है। दिन-रात गृध्रकूट की ओर उसका ध्यान लगा रहता है। वह आधा भिक्षु बन चुका है। मगध के आधे खून ने उसके ऊधम कराए, अब हमारा रक्त उस पर हावी है। उसके शरीर में जो वृज्जि-रक्त है, वह उसे सुकर्म पर ले जा रहा है। फिर वह हम पर क्यों चढ़ाई करेगा ? अगर की है, तो जरूर हम लोगों ने कुछ उत्तेजना दी है, उसे तंग किया है, लाचार किया है। इसलिए, हमें उसके खिलाफ फौज न भेज कर समझौते के लिए दूत भेजना चाहिए, उससे सुलह कर लेना चाहिए। (बोल कर हट जाता है)

एक नागरिक : बहुत ठीक, हम हिंसा से भी बच जायेंगे।

दूसरा नागरिक : तुम दोनों कायर हो, जनद्रोही, गणद्रोही !

[फिर नागरिकों में आपस में तू-तू-मैं-मैं मच जाता है—हल्ला-गुल्ला मच जाता है—महामात्य बार-बार उन्हें शान्त करने की कोशिश कर रहे—

अचानक लोग अम्बपाली को देखते हैं—अजीब है वेश उसका—शरीर पर जिरह-बख्तर—सिर के लहराते बाल के ऊपर शिरस्त्राण—पीठ पर ढाल, कमर में तलवार लटक रही—एक हाथ में बरछा, जिसकी फली के नीचे वैशाली का झण्डा लहरा रहा—उसे इस रूप में देखते ही सब आश्चर्यचकित रह जाते हैं—आपस का विवाद रुक जाता है, सब चुप हो जाते हैं। इस जमाव को वह आंख घुमाकर देखती है, फिर महामात्य की आज्ञा ले, ओजस्वी शब्दों में बोलती है—]

अम्बपाली : वृज्जिसंघ के नागरिको, वैशाली के सपूतो! मेरे इस रूप को देखकर आप चकित हो रहे हैं। नारी का यह रूप नहीं, राजनर्तकी के भी अनुरूप नहीं! आपका चकित होना उचित ही है। लेकिन, आप सोचिए तो कि मुझे यह रूप क्यों धारण करना पड़ा है? क्यों उन हाथों में आज तलवार है; जिनमें कल तक वीणा थी? क्यों उस मस्तक पर शिरस्त्राण है, जिस पर फूलों के गुच्छे लटकते थे। जिस वक्षःस्थल पर कल तक पारिजात की मालाएं होती थीं, उस पर आज यह जिरह बख्तर देखकर आप चकित न हों, यही आश्चर्य है। किन्तु आप सोचिए तो, ऐसा क्यों हुआ?

[वह चुप हो जाती है—चारों तरफ सन्नाटा है—सब एक दूसरे का मुंह देखते हैं—अम्बपाली फिर बोलती है—]

नागरिको, आप नहीं बोल रहे हैं। आप शायद नहीं सोच पा रहे हैं? या आप अपने पर शर्मिन्दा हो रहे हैं? हां, यह शर्म की बात है, लज्जा की बात है कि जब दुश्मन हमारे द्वार पर पहुंच चुका, जब उसकी तलवार हमारी गरदन छू रही है, उसके तीर हमारी छाती में घुसने को हैं, हम यहां विवाद कर रहे हैं कि हम युद्ध करें या न करें, लड़ाई अच्छी चीज है या बुरी, इसमें हिंसा या अहिंसा? हम कितने पतित हो चले हैं, और हमारा दुश्मन कितना भला है, इसकी नाप-तौल भी हम आज ही कर लेना चाहते

हैं। कैसी आत्मवंचना। आत्महत्या का कैसा सुन्दर प्रयत्न!! कहा जाता है, अजातशत्रु आधा भिक्षु हो चुका है? क्या भिक्षुओं की सेना तलवार लेकर चलती है? गांवों को जलाती है! फसलों को रौंदती है और आदमी के खून से जमीन को सींचती है?

[लोगों में सनसनी छा जाती है—चेहरों पर गुस्से की झलक स्पष्ट हो जाती है—बांह फड़कने लगती है—लोगों की इस परिवर्तित भावना को देख जैसे गरम लोहे पर हथौड़े की चोट देती अम्बपाली ओजस्वी शब्दों में कहती है—]

यह भी कहा गया है अब उस पर वृज्जियों का रक्त हावी है। नागरिको, जिस दिन अजातशत्रु ने—जिसकी कोख से पैदा हुआ जिसके दूध पर वह पला, उस वृज्जिकुमारी—महारानी चेल्लना को तड़प-तड़प मरने को लाचार किया, उसी दिन उसके शरीर का वृज्जि-रक्त सूख चुका! पितृहन्ता के शरीर में भी जो वृज्जि-रक्त का प्रवाह देखते हैं, क्या वे वृज्जियों के रक्त का अपमान नहीं कर रहे हैं? वृज्जियों का रक्तदेव रक्त है, वह राक्षस के शरीर में नहीं रह सकता।

नागरिकों की आवाजें : अजातशत्रु राक्षस है! वह पितृहन्ता है! हम उसे सबक सिखाएंगे। हम महारानी चेल्लना का बदला चुकाएंगे।

महामात्य चेतक : *शान्त! शान्त! देवि, आप अपनी बात कहें।*

अम्बपाली : फिर यह कहा गया है, हमने आदर्श खो दिया! जरूर खो दिया—जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे सामने है। हममें यह नैतिक पतन! लेकिन, सोचिए, ऐसा क्यों हुआ? कुछ दिन पहले तो यह बात नहीं थी। इन कुछ दिनों में ही *यह कौन-सा जादू हो गया।* कौन-सा जादू हुआ, किसने यह जादू किया? जिसने भाई के दिल में घुसकर भाई का प्रेम वहां से हटाया, जिसने उस दिन अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी को खून से अपवित्र करवाया, वह कौन जादू है, वह कौन-सा जादूगर है? *(जिसने विरोध में भाषण किया उसकी ओर लक्ष्य करती)* बोलिए, इस संथागार के सामने, हिम्मत हो तो, उसका नाम बताइए या यह जिम्मेवारी आप अपने ऊपर लेते हैं?

[सब नागरिक उस विरोधी नागरिक की ओर देखने लगते हैं—जिन लोगों ने उसके सुर-में-सुर मिलाया था, उनके सिर नीचे होने लगते हैं—खामोशी देख महामात्य बोलते हैं—]।

महामात्य चेतक : आर्य, जादूगर चला गया, अब सिर्फ उसका जादू रह गया है, जो हमारे कुछ भोले नागरिकों के सिर चढ़ कर बोल रहा है!
नागरिकों की आवाजें : 'वह कौन था?'—'यह क्या बात है?'—'उसका नाम बताइए।'—'हम उसे मजा चखाएंगे।'
अम्बपाली : मजा चखाएंगे, तो चलिए; रणभूमि में। वह रणभूमि में ही आपको मिलेगा। लेकिन, अब उसके हाथ में पोथी नहीं होगी, तलवार लेकर वह आपके सामने खड़ा होगा। उसने पीला कपड़ा फेंक दिया होगा, जिरहबख्तर पहन लिया होगा उसने। उसके गंजे सिर के पोले मुंह से मन्त्र की बुदबुदाहट नहीं, अब आप राक्षसी चीत्कार सुनेंगे—
नागरिकों की आवाजें : 'आप वस्सकार की बात कह रही हैं?'—'क्या उसी दुष्ट की यह करामात है?'—'उफ् मक्कार!'—'उफ् दगाबाज!'
अम्बपाली : हां, उसी दुष्ट की। देख लीजिए, वह आज आपके बीच नहीं। (चारों ओर नजर दौड़ती है—और लोग भी देखते हैं—) क्यों रहे? उसने अपना काम किया और चलता बना। फसल बो चुका, अब गया है हंसिया लाने—हम फसल, उसकी हंसिया—हमारी गरदन, उसकी तलवार!

[चारों ओर से आवाजें आती हैं—'हम ऐसा नहीं होने देंगे'—'हम वैशाली पर अपने को बलिदान कर देंगे' आदि, फिर 'वृज्जि-संघ की जय', 'वैशाली की जय', 'अम्बपाली की जय' की ध्वनि-प्रतिध्वनि होने लगती है—लोगों की उमंग देख अम्बपाली कहती है—]

नागरिकों, ठीक, वैशाली की जय, वृज्जिसंघ की जय! ये जयनिनाद हमारे हार्दिक उल्लास और मानसिक निर्णय के सूचक हैं, इसलिए वांछनीय हैं, वन्दनीय हैं। लेकिन याद रखिए, जब दुश्मन हमारे सामने है, जब 'हम

या ये' के फैसले का वक्त आ पहुंचा है, तब सिर्फ हार्दिक उल्लास या मानसिक निर्णय उपयुक्त नहीं होता। उस उल्लास और निर्णय को कार्य-रूप देने पर ही उनकी सार्थकता और हमारी सफलता निर्भर करती है! कार्यशक्ति से हीन जयनाद आत्मप्रवंचना है—इसलिए, चलिए रणभूमि की ओर, बढ़िए जयभूमि की ओर। आइए, मैं आपके मस्तक पर विजय-तिलक लगाऊं। (मुड़कर) चयनिके, रोली-चन्दन की थाल ला।

[नागरिकों का ठट्ट उसकी ओर बढ़ता है—सबके सिर पर वह रोली-चन्दन लगाती जाती है—उधर संथागार के मड़ेरे से वीरवाणी में वृज्जियों का राष्ट्रीय गीत गाया जा रहा है—]

जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो,
हिमगिरि-शृंग-सदृश सिर उन्नत,
गंग-तरंग-सदृश मन निर्मल,
हम निर्मल निर्भय,
हम उन्नत, गतिमय,
पावन हैं आदर्श हमारे, जीवन गतिमय हो,
जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो,
जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो,
हम स्वाधीन, स्वतन्त्र रहेंगे,
हम न किसी की धौंस सहेंगे,
हम अजेय, अनिवार,
हम रिपु-हित संहार,
विजय हमारी ओर
शत्रु की ओर प्रलय-लय हो,
जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो!

चार

[युद्धभूमि का एक अंचल — यहां से युद्धभूमि में होने वाला कोलाहल, जयनाद, चीत्कार-पुकार आदि के शब्द सुनाई पड़ते हैं—युद्धभूमि की एक झलक भी यहां से दीख पड़ती है—

घोड़े पर अम्बपाली आती है—वही वीर वेश—चेहरे पर पसीने की बूंदें, गर्द गुबार के दाग—शरीर पर खून के छींटे—घोड़े को खड़ा कर युद्धभूमि की ओर देखती है—

दूसरी ओर से एक और घोड़ा आता है—उस पर वैशाली के महामात्य चेतक हैं—बुढ़ापे ने मानो वीरता का बाना पहन रखा है—अम्बपाली को देखते ही अपना घोड़ा खड़ा कर देते और कहते हैं—]

महामात्य चेतक : आर्ये, सर्वनाश ! वृज्जिसंघ की स्वातन्त्र्य-पताका गिर गई ! (उसका गला भर आता है)

अम्बपाली : (साश्चर्य) यह क्या हुआ महामात्य ?

महामात्य चेतक : हुआ वही, जो होना था। हमने अपने फटे कपड़े को सीने की कोशिश की—ऊपर से वह सिला भी दीखता था; लेकिन एक तनाव ने ही उसके तार-तार उधेड़ दिए। जमीन की दरार भरती है, राष्ट्र की दरार तुरंत नहीं भरती, आर्ये ! अजातशत्रु की सेना नगर में घुस गई !

अम्बपाली : ऐं, नगर में घुस गई ? (महामात्य के चेहरे को एकटक देखती है)

महामात्य चेतक : हां, घुस गई ! अभी खबर मिली है, वह उत्तर से नगर में घुसी आ रही है। दो दीवारें पार कर चुकी, तीसरी कर रही होगी !

अम्बपाली : (आश्चर्य की अधिकता में चिल्ला पड़ती है) उत्तर द्वार से ?

महामात्य चेतक : यही तो तमाशा है, आर्ये ! दक्षिण से आने वाली सेना उत्तर द्वार से प्रवेश कर रही है।

अम्बपाली : आह ! हमें धोखा हुआ !

महामात्य चेतक : बिना विभीषण के सोने की लंका नही जल सकती थी, भद्रे ! त्रेता की गलती फिर दुहराई गई और न जाने कितनी बार कहां-कहां दुहराई जायगी।

अम्बपाली : (अपना सारा साहस समेटकर) महामात्य, हम चलें उस ओर, उनके प्रवाह को रोकें।

महामात्य चेतक : जब बांध टूट जाता है, तब भद्रे, प्रवाह के पानी को कोई नहीं रोक सकता। जो ऐसी कोशिश करेगा, वह डूबकर रहेगा। अब हम या तो इस व्यर्थ प्रयत्न मे डूब मरें या चतुर किसान की तरह जो कुछ बच सके, उसे बचाएं और अगली खेती के लिए सामान जुटाए।

अम्बपाली : अगली खेती ?

महामात्य चेतक : हां, अगली खेती। फसल की तरह राष्ट्र की जड़ भी जमीन के नीचे होती है। एक फसल बर्बाद हो जाए, दूसरी फसल लहराएगी। एक पुस्त गुलाम बन जाए, दूसरी पुस्त आजाद होकर रहेगी। दूसरी फसल पहली फसल की सड़ांद से खाद पाती है, पहली से भी अच्छी होती है। गुलाम राष्ट्र जब उभरता है, वह उन्नति की उस चोटी पर छलाग मारकर चढ जाता है, जिसके पहली पुस्त के लोग सपने ही देखते थे। लेकिन शर्त एक है।

अम्बपाली : शर्त क्या है आर्य ?

महामात्य चेतक : उस राष्ट्र के लोग नैतिक बल को न खोदें ! जो जननायक होते हैं, उनका यह काम है कि ऐसे मौके पर अपने व्यक्तिगत उदाहरण से जनता के नैतिक साहस को ऊंचा, सतह पर रखें—वह न दबें, फिर कोई नही दबेगा ! साहस संक्रामक चीजें है भद्रे ! एक का साहस हजारों-लाखों में साहस भरता है। शहादत का खून ही वह खाद है, जिसे पाकर राष्ट्र की बेल बढ़ती, फैलती और फूलती-फलती है ! हमारा साहस उन्हें भी ऊचे उठने को प्रेरित करेगा, जो आज पतित, अधम हो चुके हैं।

अम्बपाली : (घृणा से मुंह सिकोड़ती) वे पतित, वे नीच, वे नराधम ! वैशाली उन्हें कभी नहीं क्षमा कर सकती, महामात्य !

महामात्य चेतक : वैशाली का प्रतिशोध लेने के पहले ही अपने हृदय का पश्चात्ताप ही उन्हें या तो जला डालेगा, या कुन्दन बना देगा। गणतन्त्र और राजतन्त्र की प्रजा में बहुत अन्तर है, आर्ये ! राजतन्त्र की प्रजा कभी कह सकती है—'कोउ नृप होहि हमहि का हानि।' लेकिन गणतन्त्र की प्रजा पर ज्योंही दूसरों का शासन लादा जाएगा, उसका हृदय विद्रोह कर उठेगा। वैशाली की प्रजा को गुलामी में रखना असम्भव है, भद्रे !

अम्बपाली : (कातर स्वर में) आज तो हम गुलाम हो चुके महामात्य !!

महामात्य चेतक : वह तो अजातशत्रु को कल मालूम होगा। जो अपने बाप को कैद कर सका, कल देखूंगा, वह चेतक को कैसे कैद कर लेता है ! (उसका चेहरा एक अलौकिक ज्योति से दिप उठता है) कैद होने के पहले कैदी खुद अपने को कैद कर लेता है, आर्ये ! जिसकी तबीयत आजाद है, उसे कोई कैद नहीं कर सकता। अगर किसी ने ज़बरदस्ती की भी, तो पेट में गए कच्चे अन्न की तरह फिर उसे उगलना पड़ेगा—वह उसे पचा नहीं सकता। अगर यह बात नहीं होती, तो कुछ बलशाली मानव सारे संसार को गुलाम बनाकर रखते।

अम्बपाली : वैशाली से महामात्य के उपयुक्त ही बातें हैं। मैं तो इसकी कल्पना से ही घबरा रही हूं।

महामात्य चेतक : जो घबराता है, उसके सामने सबसे पहले भूत आता है, आर्ये !

[युद्धभूमि की चीख-पुकार बढ़ती और नजदीक आती-सी मालूम पड़ती है—बूढ़े महामात्य 'आर्ये, वैशाली की शान न खोना' कहकर घोड़े को फंदाते चल देते हैं—

अम्बपाली भय-चकित दृष्टि से महामात्य की ओर देख रही है कि एक तीर उसकी ओर सनसनाता आता दिखाई पड़ता है—एक दूसरा घुड़सवार अपने घोड़े को उछालकर झट वहां पहुंचता है—उसके घोड़े

के धक्के से अम्बपाली का घोड़ा जरा हट जाता है—और उस आगन्तुक घुड़सवार के गले में लगता है—वह घोड़े से लटक जाता है—

अम्बपाली के मुंह से चीख निकलती है—वह उस घुड़सवार को देखने की कोशिश करती है कि तब तक कई घुड़सवार आ जाते हैं—आपस में तलवारें चलने लगती हैं—सब तितर-बितर हो जाते हैं—]

पांच

[अम्बपाली का वसन्तोद्यान—सन्ध्या का समय—

बगीचे के बंगले के बरामदे से सटा एक ऊंचा मंच—मंच पर सजी-सजाई फर्श—उस पर बैठी अम्बपाली आईना सामने रखे शृंगार कर रही है—

मंच के आगे उद्यान का जो हिस्सा है, उसमें बेला, मोतिया, जूही आदि की पक्तियां कलियों से लदी—बीच में एक छोटा-सा नकली हौज, जिसमें पालतू हंस का जोड़ा तैर रहा—

अम्बपाली की बगल में चयनिका खड़ी है—चयनिका कभी आसमान को देखती है, कभी अम्बपाली के चेहरे को—वह आश्चर्य और विषाद की पुतली बनी हुई है—अम्बपाली के चेहरे को पढ़ना उसके लिए मुश्किल हो रहा है—वह ठीक सन्ध्या का प्रतिरूप है; जिसमें दिन-रात, हर्ष-विषाद का निर्णय करना कठिन हो रहा—

चयनिका की ओर देखकर अम्बपाली मुस्कराती है—फिर उससे पूछती है—]

अम्बपाली : चुन्नी, देख तो, यह मेरा शृंगार कैसा उतरा ?

चयनिका : (नहीं बोलती है, सिर नीचा कर लेती है)

अम्बपाली : बोल-बोल, शृंगार कैसा उतरा ?

चयनिका : (फिर भी चुप है, सिर और नीचा कर लेती है)

अम्बपाली : (प्यार-भरे गुस्से में) नही बोलती ? तुझे बताना होगा चयनिके, कि आज का मेरा शृंगार कैसा उतरा ?

चयनिका : मैं कुछ नही समझ पाती भद्रे !

अम्बपाली : तू कुछ नही समझ पाती और न समझ सकेगी। अम्बपाली की बातें समझ जाना आसान भी तो नही है, चुन्नी !

चयनिका : हां, आर्ये !

अम्बपाली : तू यही न सोच रही है, कहां आज सारी वैशाली में मातम है, रुदन है, हाहाकार, और कहां मेरा यह शृंगार, यह प्रसाधन, यह उल्लास यह हास ! क्यों ?

चयनिका : हां, आर्ये !

अम्बपाली : लेकिन सोच, वैशाली में यह मातम क्यों है ? क्योंकि यह हार चुकी है। हारा आदमी अगर मातम न मनाए, गम में पड़ा आदमी न रोए, तो उसकी छाती फट जाए, धुकधुकी बन्द हो जाए, वह मर जाए। वैशाली मरना नहीं चाहती है, इसलिए मातम मनाती है। लेकिन··· (वह चुप हो जाती हैं)

चयनिका : 'लेकिन' क्या भद्रे ? (उसकी आंखों में भय की छाया)

अम्बपाली : तूने सुना है, जब स्त्रियां सती होने जाती हैं, तब वह शृंगार कर लेती हैं। जिसने चिता से लिपटना तय कर लिया, वह अन्तिम साज-सज्जा से अपने को क्यों वंचित रखे ? जब घर वाले छाती पीटते होते हैं, वह हंसती है, मुस्कराती है, शृंगार करती है। लेकिन घर वाले रो-पीटकर भी श्मशान से ज़िन्दा लौटते हैं, वह हंसकर भी अपने को ज्योति में विलीन कर देती है !

चयनिका : भद्रे, भद्रे, यह आप क्या कह रही हैं ? (उसकी आंखें छलछला उठती हैं)

अम्बपाली : बहुत ही सही कह रही हूं। अम्बपाली ने किसी एक व्यक्ति पर नहीं, वैशाली पर अपने को उत्सर्ग किया था। आज जीती-जागती वैशाली मुर्दा लाश-सी पड़ी है। इसे कोई नहीं बचा सका। अब अम्बपाली ने तय किया है, या तो इस लाश में वह जान फूंकेगी, या इसी के साथ जल मरेगी !

चयनिका : आर्ये, आर्ये, ! (तलहथी से मुंह ढंककर रोने लगती है)

अम्बपाली : कातर मत बन, चयनिके ! अपने को अम्बपाली की योग्य अनुचरी सिद्ध कर ! देख, मेरा शृंगार अच्छा बना कि नहीं ! इच्छा होती है, जितने शृंगार और प्रसाधन के सामान हैं, सब आज लाद लूं, ओढ़ लूं ! (कुछ रुक कर) जल्दी कर, मगधराज अजातशत्रु अभी यहां पधारने वाले हैं।

चयनिका : मगधराज ! अजातशत्रु !

अम्बपाली : हां, महामात्य ने कहा था, जो डरता है, उसके नजदीक सबसे पहले भूत आता है ! वैशाली में उनकी पहली कृपा मुझी पर हुई है। उन्होंने खबर भेजी है, आज अकेले-अकेले यहां पधारेंगे ! मगध-पति का स्वागत भी तो साधारण साज-सज्जा से नहीं होना चाहिए। वह भी तो देख लें कि इस अलौकिक नगरी की राजनर्त्तकी कैसी है ?

चयनिका : (कुछ घृणा और क्रोध से) मगधपति के स्वागत के लिए ? …भद्रे…

अम्बपाली : (हंसकर) रुकती क्यों है, बोल। आज का सब कहा-सुना माफ !

चयनिका : (चुपचाप अम्बपाली का चेहरा घूर रही है)

अम्बपाली : हां रे, मगधपति के स्वागत के लिए ! राजनर्त्तकी अपने स्वागत से किसी आगत को कैसे वंचित कर सकती है ? हां, स्वागत-स्वागत में फर्क है। दीपशिखा भी तो पतंग का स्वागत करती है। और, उसके स्वागत के दो ही नतीजे होते हैं,—या तो पतंग जलेगा या दीपक बुझेगा। जिस दीपक ने बुझना तय कर लिया, उसकी शिखा जितनी भी तेज रहे, उतना ही अच्छा है !

चयनिका : (भर्राई आवाज में) फिर, यह आप क्या कह रही हैं, भद्रे !

अम्बपाली : चयनिके, अम्बपाली तय कर चुकी है, जिसे वैशाली नहीं हरा सकती, उसे अम्बपाली हराएगी। हराएगी या देखो, (अंगूठी दिखाती है) इस अमृत को चूसकर अमर बन जाएगी। जो पताका हमारे वीरों ने रणभूमि मे गिरा दी, आज अजातशत्रु देखेगा, इस मेरी रंगभूमि में वह कितनी ऊंची लहराती है।

चयनिका : यह अजीब द्वन्द्वमयी बातें हैं, आर्ये !

अम्बपाली : द्वन्द्वात्मक परिस्थिति में बातें भी द्वन्द्वात्मक ही हो सकती हैं। हम हराए जा चुके हैं, तो भी विजय की आकांक्षा रखते हैं। हम गिराए जा चुके हैं, तो भी उठने का अरमान हमसे हटा नहीं—इस . . . में हम सुनहली भोर का सपना देख रहे हैं ! इस . . . साधी-सादी बातें क्या हो सकती हैं, पगली !

[वह हाथ बढ़ाकर चयनिका की उंगली पकड़ती और उसे खींच कर ठुड्डी पकड़ चुमकारती है, उसके मस्तक पर चुम्बन देती है—

धुंधलका हो रहा है—एक परिचारिका वहां आकर दीप चला जाती है—एक ऊंचे चिरागदान पर कितनी ही दीपशिखाएं जगमगा उठती हैं—उनके प्रकाश में अम्बपाली का सौंदर्य और चमक उठता है—

दूसरी परिचारिका इसी समय एक अंगूठी लाकर अम्बपाली को देती है—अंगूठी पर वह नाम पढ़ती है और कहती है—'जा उन्हें बुला ला।'

अजातशत्रु आता है—साधारण नागरिक-सा है वेश उसका—अम्बपाली आगे बढ़ कर स्वागत करती और मंच पर बिठलाती है—

चयनिके! तू भी चली जा, यहां कोई न आए—कहकर बड़ी ही गम्भीर मुद्रा में अजातशत्रु से पूछती है—]

अम्बपाली : मगधपति की आज्ञा?

अजातशत्रु : मगधपति मत कहो, राजनर्त्तकी! मैं मगधपति की हैसियत से यहां नहीं आया। मगधपति इस वेश-भूषा में नहीं आया करते।

अम्बपाली : क्षमा करें, मुझसे गलती हुई। मगधपति तो धनुष की टंकार और तलवारों की झंकार के साथ आया करते हैं!

अजातशत्रु : मगध को अपने धनुष और तलवार पर कम नाज नहीं है, राजनर्त्तकी! तुम्हारे व्यंग्य में भी सचाई है!

अम्बपाली : सिर्फ एक बात कहना मैं भूल गई थी; क्षमा कीजिए, तो निवेदन करूं।

अजातशत्रु : तुम्हारे लिए हमेशा क्षमा है।

अम्बपाली : क्योंकि मैं नारी हूं और सुन्दरी भी!

अजातशत्रु : तुम सुन्दरी हो, इसमें भी सचाई है!

अम्बपाली : (ताने के स्वर में) और इसमें भी सचाई है कि मगध को धनुष और तलवार के साथ ही अपने महामन्त्री वस्सकार पर भी कम नाज नहीं।

अजातशत्रु : (मुस्कराते हुए) तुम वस्सकार पर नाराज हो लो, राज-नर्त्तकी, लेकिन मन्त्री वही है, जो विजय का पथ प्रशस्त करे !

अम्बपाली : चाहे जिस घृणित उपाय से हो ?

अजातशत्रु : विजय का पथ हमेशा ही कीचड़ से भरा और रक्त से सना होता है। जो गन्दगी और खून से डरे, उसे सिर से मुकुट उतारकर हाथ में भिक्षा-पात्र ले लेना चाहिए।

अम्बपाली : (जैसे निशाना लेकर) भगवान् बुद्ध ने मगधपति को यही शिक्षा दी थी ! क्यों ?

अजातशत्रु : भगवान् ने कुछ दूसरी शिक्षा दी थी। (मुस्कराते हुए) किन्तु, एक नन्ही-सी चीज ने सब बण्टाढार कर दिया, राजनर्त्तकी ! देखोगी वह चीज ?

अम्बपाली : कैसी चीज ?

अजातशत्रु : (हाथी दांत पर बनी अम्बपाली की तस्वीर निकालकर उसके हाथ में देते हुए) यही है वह चीज !

अम्बपाली : (आश्चर्य चकित) ऐं, यह मैं ! मेरी···

अजातशत्रु : हां, तुम्हारी इस छोटी-सी तस्वीर ने ही फिर एक बार पीला कपड़ा उतार फेंकने को लाचार किया, एक बार फिर गंगाजल के धोए हाथों को खून से धोने को बाध्य किया !

अम्बपाली : (भौंचक बनी) मगधपति !

अजातशत्रु : राजनर्त्तकी, मगधपति ने जिन्दगी के इतने चढाव-उतार देखे हैं कि उसने तय कर लिया था— शेष जीवन वह गृध्रकूट पर ध्यान लगाते राजगृह मे बिता डालेगा; या राजपाट के झंझटो को दूर फेंक बोधिवृक्ष की छाया में शान्ति-सुख प्राप्त करने को एक दिन प्रस्थान कर देगा। किन्तु, उसके सारे मसूबे हवा हो गए —उसे छल की शरण लेनी पड़ी, बल का प्रयोग करना पड़ा। किसके चलते ? क्यों ? इसी छोटी-सी तस्वीर ने··· (मुस्कराता है)

अम्बपाली : तो आप राज्य के लिए वैशाली नही आए, वैशाली आए हैं ?

अजातशत्रु : तुमने बिलकुल ठीक कहा।

अम्बपाली : सौन्दर्य, जो राज्य से भी क्षणिक है !

अजातशत्रु : सौन्दर्य, जो राज्य से भी अधिक लोभक, मोहक और आकर्षक है। हर दिव्य वस्तु क्षणिक होती है, राजनर्त्तकी ! फूल की मुस्कान, चपला की चमक, इन्द्रधनुष की रंगीनियां और ओस की चमचमाहट सब क्षणिक है ! क्षणिकता दिव्यता की अनुचरी ही नहीं, सहचरी भी है !

अम्बपाली : और, मानवता की महत्ता इसी में है कि क्षणिक के पीछे दौड़ा जाए ?

अजातशत्रु : क्षणिक के पीछे नही, दिव्य के पीछे। हर अच्छी चीज़ के पीछे उसका बुरा पहलू होता है, राजनर्त्तकी। जन्म के पीछे मरण है, उल्लास के पीछे विषाद, उत्सव के पीछे मातम। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि जिन्दगी और जश्न—जीवन और उत्सव—को भूलकर हम हमेशा शोकसागर में ही गोते लगाते रहें—मातम मनाते रहे !

अम्बपाली : (घृणायुक्त व्यंग्य में) और इस ज़िन्दगी और जश्न के लिए हजारों आदमियो का खून बहाए, हजारों माताओं को निपूती बनाएं, हजारों युवतियो का सुहाग-सिन्दूर धोएं और हजारों मासूम बच्चों की ज़िन्दगी को आंसुओं मे डुबोएं !

अजातशत्रु : हां, हां, राजनर्त्तकी ! इन भावुकता की बातो से तुम अजातशत्रु के दिल को दहला नहीं सकती—बल्कि, ऐसा करके तुम उसके दिल में सोई उस राक्षसी को कुरेद कर जगाती हो, जिसे वह मुश्किल से सुला पाता है !

[वह अचानक उठ कर खड़ा हो जाता है—इधर-उधर टहलने लगता है—आसमान की ओर बार-बार देखता है—अम्बपाली कुछ देर तक उसकी भाव-भंगी देखती है —फिर नज़दीक जाकर कहती है—]

अम्बपाली : मगधपति, आसन ग्रहण करें !

अजातशत्रु : नही, मुझसे बैठा नही जाएगा, सुन्दरी !

अम्बपाली : 'सुन्दरी' कह कर मेरा अपमान न कीजिए !

अजातशत्रु : हां, हां, समझा, समझा ! (हंस कर) सुन्दरी का आग्रह

कोई कैसे टाल सकता है ? अच्छा, आओ बैठें।

[अजातशत्रु बैठ जाता है—किन्तु अम्बपाली खड़ी ही रहती है—अजातशत्रु कहता है—]

अजातशत्रु : बैठो, सुन्दरी !
अम्बपाली : क्या नारी सिर्फ सुन्दरी ही होती है ?
अजातशत्रु : हां, जो सुन्दरी नहीं है, वह नारी नहीं है। ठीक उसी तरह कि जो वीर नहीं है, वह मर्द नहीं है।
अम्बपाली : नारी वीर भी हो सकती है !
अजातशत्रु : और मर्द सुन्दर भी हो सकते हैं। लेकिन इन दोनों को प्राकृतिक गड़बड़झाला ही समझो, सुन्दरी !

[अम्बपाली आंखें गड़ाकर अजातशत्रु के चेहरे को देखती है—उसके शीतला के दाग से भरे चेहरे पर अजीब क्रूरता दिखाई पड़ती है—अम्बपाली को यों घूरते देख वह हंस कर बोलता है—]

अजातशत्रु : क्यों ? मैं कुरूप हूं, यही न देख रही हो ?
अम्बपाली : इसके पीछे की चीज भी।
अजातशत्रु : तुम मुखमुद्रा पढ़ सकती हो ?
अम्बपाली : आप शस्त्र चला सकते हैं ?
अजातशत्रु : आहा ! (जोरों से हंसकर) तुम-जैसी राजनर्त्तकी पाकर कोई राजसभा धन्य हो सकती है।
अम्बपाली : (उसका अभिप्राय भांपकर) आप यों मेरा अपमान नहीं कर सकते।
अजातशत्रु : मैं तुम्हें सम्मान देने आया हूं। वैशाली-विजेता आज वहां की राजनर्त्तकी अम्बपाली से······
अम्बपाली : (बीच में ही बात काटकर) प्रणय की भीख मांगने आया है ? क्या, यही न कहना चाहते थे ?
अजातशत्रु : बिलकुल ठीक ! उफ्, तुम कितनी बुद्धिमता हो,
अम्बपाली : अम्बपाली प्रशंसा की भूखी नहीं है मगधपति !

प्रशंसा भी वैशाली-विजेता के मुंह से। ऐसी प्रशंसा को वह लानत समझती है। घोंसले को उजाड़ने वाले बहेलिये से चिड़िया चुमकार सुनना पसन्द नहीं करती।

अजातशत्रु : हां, पहले पंख फटफटाती है, चंगुल और चोंच चलाती है; लेकिन पीछे पालतू बनकर हाथ पर खेलती है, कन्धे पर फुदकती है और सिर पर घोंसला बनाती है। क्यों? (अजीब उपेक्षा-भाव से हंसता है)

अम्बपाली : (तमक कर) कोई ऐसी चिड़िया भी हो सकती है, जो पंख पटक कर मर जाना पसन्द करेगी, लेकिन बहेलिये का अहसान न लेगी।

अजातशत्रु : ऐसी चिड़िया आज तक नहीं देखी गई।

अम्बपाली : आदमी सिर्फ चिड़िया नहीं है।

अजातशत्रु : मगधपति साधारण आदमी नहीं है!

अम्बपाली : अम्बपाली भी साधारण नारी नहीं है।

अजातशत्रु : तुम क्या बोल रही हो सुन्दरी!

अम्बपाली : आप क्या चाह रहे हैं, मगधपति!

अजातशत्रु : मैं क्या चाहता हूं, इसे कहने की जरूरत रह गई? तो सुनो, (दर्प से) अम्बपाली वैशाली-विजेता की राजनर्तकी बनेगी, उसे राजगृह चलने का निमंत्रण देने आया हूं।

अम्बपाली : और, अगर वह नहीं जाए?

अजातशत्रु : अजातशत्रु अगर-मगर नहीं जानता!

अम्बपाली : उन्हें जानने को लाचार होना पड़ेगा।

अजातशत्रु : (आवेश में) क्या कहा?

अम्बपाली : (लापरवाही से) मैंने कहा, मगधपति को सोचना पड़ेगा कि अम्बपाली अगर मगध जाने को राजी न हुई, तो वह क्या करेंगे?

अजातशत्रु : तुम नहीं जाती? (भवें टेढ़ी करता है)

अम्बपाली : जरा अपनी भवें सीधी कीजिए, मगधपति! यह हम नारियों का ही श्रृंगार है।

अजातशत्रु : (आग-बबूला होकर) संभलकर बोलो राजनर्तकी, तुम

किसके सामने बोल रही हो !

अम्बपाली : उसके सामने, जो मुझसे प्रणय-भिक्षा मांगने आया है। भिखारी को घमण्ड नहीं शोभता !

[अजातशत्रु फिर उचक कर खड़ा हो जाता है—अजीब उसकी मुखमुद्रा हो रही है—वह बेचैनी से मंच पर टहलने लगता है,...कुछ देर तक अम्बपाली खड़ी रहती है—फिर विनम्रता के शब्दों में कहती है—]

अम्बपाली : मगधपति !

अजातशत्रु : (कुछ जवाब नहीं देता, टहलता रहता है)

अम्बपाली : मगधपति से मेरा निवेदन है, आसन ग्रहण करें।

अजातशत्रु : (रुककर, उसके चेहरे पर आंखें गड़ाकर) सुन्दरी, तुम्हें याद रखना चाहिए कि वैशाली-विजेता से बात कर रही हो !

अम्बपाली : वैशाली-विजेता पर भी जिन्होंने विजय प्राप्त की थी, उनसे भी अम्बपाली ने इसी तरह बात की थी।

अजातशत्रु : (चौंककर) कौन है, जिसने मुझ पर विजय प्राप्त की थी ? अजातशत्रु अजेय है, राजनर्त्तकी !

अम्बपाली : आह ! आदमी अभिमान में अपने आपको इतना भूल जाता है !

अजातशत्रु : (आंखें गुरेरता है)

अम्बपाली : मेरा मतलब भगवान बुद्ध से था, मगधपति !

अजातशत्रु : (कुछ ठण्डा पड़ते हुए) ओहो, अब समझा ! हां, सुना था, भगवान बुद्ध तुम्हारे आम्रकानन में ठहरे थे। उनसे तुम्हारी बातें हुई थी ?

अम्बपाली : सिर्फ एक सन्ध्या को नहीं, सात दिनों की सात सन्ध्याएं उनसे बातें करते में मेरी गुज़री।

अजातशत्रु : फिर क्या हुआ ?

अम्बपाली : वही, जो दो समान बलशाली व्यक्तियों की जोर-आजमाई के बाद होता है !

अजातशत्रु : (आश्चर्य से) समान बलशाली !

अम्बपाली : जी हां, बल सिर्फ तलवारों और धनुष में नहीं है, मगधपति ! कुछ ऐसी ताकतें भी हैं, जिनके सामने तलवारें मोम की तरह गल जाती हैं और धनुष तिनके की तरह टूट जाते हैं। क्या आप भगवान बुद्ध के निकट धनुष और तलवार लेकर गए थे ?

अजातशत्रु : (कुछ बोलता नहीं, सोचता है)

अम्बपाली : (मुस्कराती हुई) और, अम्बपाली के पास भी तलवार और धनुष लेकर नहीं आ सके।

अजातशत्रु : तुम इस भ्रम में न रहो कि मैं निःशस्त्र हूं।

अम्बपाली : भगवान् बुद्ध ने भी यह कभी न सोचा होगा कि मगधपति साधनहीन होने के कारण उनके पास निःशस्त्र गये थे।

अजातशत्रु : तुम अजीब नारी हो अम्बपाली !

अम्बपाली : भगवान् बुद्ध ने भी यही कहा था।

अजातशत्रु : उन्होंने और क्या कहा था ?

अम्बपाली : उनसे मेरी बातें अभी रह गई हैं—वह फिर वैशाली पधारेंगे।

अजातशत्रु : अम्बपाली, राजगृह चलो। वहीं गृध्रकूट पर भगवान् के दर्शन करना।

अम्बपाली : मगधपति, अपने को धोखे में मत रखिए। आप मुझे गृध्रकूट पर भगवान् के दर्शन कराने के लिए आमन्त्रित करने नहीं आए। भगवान् और गृध्रकूट का दिव्य सन्देश आपने सुना होता, तो आप यहां इस रूप में आते ही नहीं। यहां पर आपको बोधिवृक्ष की छाया नहीं, मार की आंधी उड़ा ले आई है। लेकिन, सोचिए सम्राट्, जिसकी एक छोटी-सी तस्वीर ने आपके शरीर से पीला वस्त्र उतरवाया, नरसंहार पर उतारू कराया, उसका वहां सशरीर जाना आपके, राजगृह के और मगध के लिए, क्या मंगल की बात हो सकती है ?

[अम्बपाली की यह बात सुन वह थोड़ी देर असमंजस में पड़ जाता है; लेकिन, फिर जैसे संभलकर बोलता है—]

अजातशत्रु : मैं अकेला लौट नहीं सकता (उसकी आवाज भर्राई हुई है)

अम्बपाली : सभी यही कहते हैं, सभी यही चाहते है, लेकिन एक दिन सभी को अकेले लौटना होता है, मगधपति ! यही होता आया है, यही होता रहेगा। आपसे पहले एक और मगधपति ने ऐसा ही कहा था…

अजातशत्रु : एक और मगधपति ने ? यह दूसरा मगधपति कौन ?

अम्बपाली : क्या उनकी तस्वीर देखिएगा ? (वह झटपट एक मंजूषा से एक तस्वीर निकालती और अजातशत्रु को दिखाती है)

अजातशत्रु : यह तस्वीर तुम्हें कहां मिली नर्त्तकी !

अम्बपाली : और आपको वह तस्वीर कहां मिली; मगधपति ? मगधपति ! आप घबरायें नहीं; राजनर्त्तकी का द्वार सबके लिए खुला है ! हम यों ही कभी एक जगह अचानक मिलते हैं और यदि हमने सही मार्ग पकड़ा, तो एक दिन हम सभी एक साथ होंगे—अनन्त काल तक के लिए। सवाल सिर्फ क्षणिक और अनन्त के बीच चुनाव का है, सम्राट् !

[अजातशत्रु चुप हो जाता है—धीरे-धीरे टहलता है—किन्तु अब उसके चेहरे पर उत्तेजना या रोष की भयानकता नहीं, विषाद और पराजय की भावना है—वह अचानक जैसे कुछ निर्णय कर लेता है और कहता है—]

अजातशत्रु : अम्बपाली तुमने मुझे पराजित किया, मैं आज ही वापस जाता हूं !

अम्बपाली : वैशाली-विजेता अम्बपाली को यह श्रेय दे रहे हैं, यह उनकी कृपा है !

अजातशत्रु : अजातशत्रु के हृदय में दया, ममता, कृपा, कृतज्ञता आदि कोमल भावनाएं नहीं हैं, राजनर्त्तकी। यह सिर्फ जय जानता है और अपनी पराजय को जय मानने की दृढ़ता इसमें नहीं है। लेकिन याद रखना, अजातशत्रु पराजय नहीं बर्दाश्त कर सकता। मुझे वैशाली की विजय को फिर आना पड़ेगा—

अम्बपाली : आइएगा, पर अब पहले महामन्त्री वस्सकार को नहीं

भेजिएगा, सम्राट् !

अजातशत्रु : अब उसकी जरूरत नहीं रह गई, अम्बपाली ! वैशाली-विजय का पथ तो प्रशस्त हो चुका है !

[वह झपटकर, तेजी से, वहां से चल पड़ता है—अम्बपाली उसकी पीठ को एकटक देखती रह जाती है—उसके मुंह से शब्द नहीं निकलते, लेकिन उसकी आंखें पुकार-पुकार कर कह रही हैं, यह अजीब पुरुष है !]

चौथा अंक

एक

[रात का सन्नाटे का आलम—

वैशाली का एक प्रान्तर—बांस का झोपड़ा, जिसके आगे बांस से ही घिरा एक आंगन—झोपड़े के बरामदे पर एक चिराग टिमटिम कर रहा—झोपड़े के भीतर भी रोशनी—

झोपड़े के भीतर, दरवाजे के सामने, एक खाट पर अरुणध्वज पड़ा है—समूचा शरीर ढका, सिर्फ सिर उघरा, बाल बिखरे, चेहरा सूखा, गाल पिचका—नाक कुछ असाधारण तौर से उभर आई—धंसी आंखें बन्द—

जिस दिन वैशाली में मगध-सेना घुसी, यह घायल हुआ—जो तीर अम्बपाली की ओर आ रहा था, इसी ने अपने ऊपर ले लिया था—

जख्म बढ़ता ही गया—रात-दिन बुखार रहता है—मधूलिका की लाख कोशिश करने पर भी हालत नहीं सुधरी—आज उसकी हालत सब दिनों से खराब है—

उसके सिरहाने मधूलिका बैठी, उंगलियों से उसके बालों को सहला रही है—उसके चेहरे से करुणा टपकी पड़ती है—कई दिन से उपवास और अनिद्रा ने चेहरे पर स्याही-सी पोत दी है—

कभी-कभी अरुण की आंखें खुलती हैं—यह छत की ओर देखता है, फिर मधूलिका की ओर देखता है—रह-रहकर हलकी-सी आह उसके गले से निकलती है और आंखें बन्द हो जाती हैं—

उसकी आंखें बन्द होते ही मधूलिका की आंखों से बड़े-बड़े मोती के दाने-से आंसू टपक पड़ते हैं—किन्तु, यह तुरत संभल जाती है, जिसमें अरुण आंखें खोले, तो उसे आंसू नहीं दीख पड़ें—चिकित्सक कह गए हैं, जरा-सा मानसिक धक्का इसकी बिगड़ती हालत को और खराब कर सकता है—

एक बार अरुण आंखें खोलते ही कहता है—'मधु, पानी',—मधूलिका झट खाट की बगल में रखी सुराही से कटोरे में पानी डाल कर उसे पिलाती है—पानी पीने के बाद अरुण कहता है—]

अरुणध्वज : मधु, अब रात कितनी है ?
मधूलिका : अभी तीसरा पहरुआ जाग दे गया है।
अरुणध्वज : आह, भोर न जाने कब होगी ?
मधूलिका : बस, अब भोर ही तो होगी, घबराओ नहीं।
अरुणध्वज : (छत की ओर एकटक देखते) देखती है, मधु ! देख, देख, मा बुला रही हैं।
मधूलिका : यह क्या बोल रहे हो ?
अरुणध्वज : हां, हां, मां बुला रही हैं—कल मेरी शादी होगी···
मधूलिका : ऊपर मत देखो, आंखें मूद लो।
अरुणध्वज : आखें मूंद लूं ? मां से आंखें मूंद लूं ? पगली, यह मेरी शादी के सपने देखती स्वर्ग गईं। स्वर्ग में मेरे लिए दुलहन खोज रखी है उन्होंने, और उनसे आखें मूंद लू ?
मधूलिका : (उसकी आंखों पर हाथ फेरती) सो जाओ, अरुण, सो जाओ।
अरुणध्वज : सो जाऊं। अकेले नींद नही आती मधु ! कल स्वर्ग मे ही सोऊगा। दुलहन के साथ सोऊगा। तू भी चल न मधु ! मैं दुलहन के साथ सोऊंगा, तू गीत गाना—
मधूलिका : (उसकी आंखों से बरबस आंसू ढुलक आते हैं)
अरुणध्वज : तू तो फिर रो पड़ी। चल, तू भी स्वर्ग चल। वहीं तेरी भी शादी कर देंगे। तू भी निश्चिन्त सोयेगी। यहां हमेशा रोते रहने से क्या फायदा भला ?
मधूलिका : (आंसू पोंछती, आजिजी की आवाज में) सो जाओ, अरुण, वैद्यजी ने कहा है, बोलो मत।
अरुणध्वज : वैद्यजी ने कहा है ? यह वैद्यजी कौन होते हैं मधु ?
मधूलिका : सो जाओ। (उसांसें लेती है)

अरुणध्वज : (कुछ उत्तेजना में) नहीं, बता, यह वैद्य कौन होते हैं ? वे कौन होते हैं कहने वाले कि मैं सोऊं ! वैद्य मुझे क्यों कहेंगे ?

मधूलिका : तुम बीमार जो हो ।

अरुणध्वज : मैं बीमार हूं ? मैं बीमार ? मैं बीमार हूं, तो मेरी शादी कैसे होगी ? (छत की ओर देखते) क्यों मां, मैं बीमार हूं ? मैं बीमार हूं ? तो क्यों कह रही थीं कि मेरी शादी होगी ? (मधु से) मैं कब बीमार पड़ा रे ?

मधूलिका : जोर से मत बोलो, उस दिन तुम्हीं न जख्मी हुए।

अरुणध्वज : हां, हां, मैं उस दिन ज़ख्मी हुआ । उफ् कैसा वह तीर था, गले में आ लगा ! मधु, आह ! (कराहता है) जोरों से दर्द कर रहा है, मधु ! उफ् !

मधूलिका : सो जाओ, जोर से मत बोलो । वैद्यजी ने कहा है, जोर से बोलने पर ज़ख्म का टांका टूट जाने का डर है—गले का जख्म है न ?

अरुणध्वज : टांका टूटेगा, तो क्या होगा, रे !

मधूलिका : चुप हो अरुण, सो जाओ ।

[मधूलिका उसके बालों में फिर हाथ सहलाने लगती है—अरुण आंख मूंद लेता है—मर्मान्तक पीड़ा दबाने की कोशिश की बेचैनी और बेकली उसकी परेशानी पर झलक रही है—मधूलिका की आंखों से आंसू टपकते हैं—

अरुणध्वज थोड़ी देर तक आंखें मूंदे रहता, फिर आंखें खोलता और मधु से पानी मांगता है—मधूलिका पानी पिलाती है—पानी पीकर छत की ओर देखता, बोलता है—]

अरुणध्वज : मधु, देख ! वह मां क्या कह रही हैं ?

मधूलिका : चुप रहो अरुण, वहां मां नहीं हैं ?

अरुणध्वज : मां नहीं हैं ? क्या कहा, मां नहीं हैं ? मां नहीं है, तो वह कौन है, रे ! (ऊपर) क्यों मां, तू नहीं है ? (मधु से) देख, वह मा ही है । पहचान, पहचान—

मधूलिका : चुप रहो, अब अम्बा आती होगी !

अरुणध्वज : (रूठने की आवाज में) अम्बा आती होगी। हां, हां, तू रोज मुझे ठगती है—'चुप रहो, अम्बा आती है; चुप रहो, अम्बा आती है'— मैं हर बार चुप होता हूं, किन्तु अम्बा कहां आई ?

मधूलिका : इस बार जरूर आएगी, तुम चुप तो होओ।

अरुणध्वज : क्यों मधु, अम्बा शादी नहीं करेगी ? आती है, तो कहना, वह भी स्वर्ग चले। हम तीनों वहीं शादी करेंगे। निश्चिन्त सोयेंगे। (अचानक उत्तेजित होकर) देख मधु, वह अम्बा पर तीर…तीर आ रहा है रे, तीर…तीर ! (चिल्लाता है, उठने की कोशिश करता है)

मधूलिका : (उसे पकड़कर सुलाती हुई, तेजी से) तुम नहीं सोओगे ? मैं जहर खाकर रहूंगी।

अरुणध्वज : जहर ! (बेचैनी प्रकट करते हुए) नहीं, नहीं मधु, मैं सोता हू, तू जहर मत खा, मधु ! तेरे बिना मुझे कौन देखेगा ? (जख्म पर हाथ ले जाते) आह, दर्द ! उफ् ! !

मधूलिका : जरा दवा ले लो। (दवा पिलाती है)

अरुणध्वज : (दवा पीकर) मौसी कब आएगी मधु ?

मधूलिका : वह आती ही होगी। मैंने रथ भिजवाया है कि वह तुरत रातोरात आ जाए। अब पहुंचती ही होंगी।

अरुणध्वज : तू यह क्या पिला देती है, मधु ! मुझे नींद आ रही है। मौसी आएं, तो जगा देना।

[वह आंखें मूंद लेता है—थोड़ी देर बाद उसे नींद आ जाती है—

मधूलिका घर से बाहर आती है—आंगन में देखती हैं, शुक्र तारा पूरब के आसमान में काफी ऊपर उठ चुका है—उधर तुला—डण्डी-तराज—पश्चिम क्षितिज पर जा चुकी हैं—

रथ का घर्र-घर्र शब्द होता है—मधूलिका उधर चौकन्ना होकर देखती हैं—देखती है, सुमना के साथ अम्बपाली आंगन में घुस रही—]

मधूलिका : तू ? (लपकती हुई) तू कहां से अम्बे ?

अम्बपाली : (मधूलिका से लिपटी जाती है) तूने मुझे खबर क्यों न की मधु ? उफ् ! अरुण कहां है ?

मधूलिका : जोर से मत बोल। उसे अभी नींद आई है।

अम्बपाली : सुना कि तू इतने दिनों से यहां है? अरुण को यह क्या हुआ? कैसा है वह जख्म?

मधूलिका : यह सब मत पूछ अम्बे! दुनिया की यही रीति है। जमीन पर अकेला चकोर तड़पता है, आसमान तर तारों से घिरा चांद हंसता है। सबकी अपनी-अपनी तकदीर होती है।

अम्बपाली : यह तू क्या बोल रही है, मधु?

मधूलिका : हां अपनी-अपनी तकदीर। तू राजनर्त्तकी बनी, अरुण पागल बना, मैं भिखारिन बनी। अब अरुण जा रहा है··· (उसकी आंखों से टप-टप कुछ बूंदें गिर पड़ती हैं)

अम्बपाली : हाय, यह क्या? मुझे उसे देखने दे मधु!

मधूलिका : दूसरी गलती मत कर अम्बे! वैद्यजी कह गए हैं, अधिक उत्तेजना होने से जख्म का टांका टूट जाने का डर है। कण्ठ का जख्म है, अब खून जारी हुआ, तो फिर उसका बचना···

अम्बपाली : कण्ठ का जख्म। यह क्या हुआ? कैसे हुआ?

मधूलिका : यह भी तेरे ही चलते।

अम्बपाली : मेरे चलते?

मधूलिका : हां, राजनर्त्तकी बनने से ही तेरा मन न भरा, तो उस दिन तुझे वीरांगना बनने का शौक हुआ था न? उस वैशाली की चढ़ाई के दिन? तेरा वह व्याख्यान? पागल अरुण ने जिद्द की, मुझे घोड़ा मोल ले दो, मैं लड़ूंगा। वह लड़ाई में गया। हमेशा तेरे पीछे-पीछे लगा रहा। शायद एक तीर तुझ पर चला था?

अम्बपाली : (रोती हुई) अरे, वह अरुण था! हाय-हाय, मैं ही उसकी मृत्यु की वजह···तूने मुझे खबर क्यों न की मधु? आह!

मधूलिका : न खबर की, न करती। (सुमना से) मौसी, आपने यह क्या किया? आपको यहां सीधे आना था।

सुमना : मैं क्या जानूं मधु! मातृत्व मुझे पहले अम्बा के घर घसीट ले गया। इसने पूछा, कहां? मैंने कहा, मधु ने बुलाया है। तेरा नाम सुनकर ही यह चौंकी और अरुण की बीमारी का हाल सुनते ही तेरे भेजे रथ पर

यहा चली आई! विधाता, यह क्या सुन रही हूं, क्या देख रही हूं? (उसका गला भर आता है।

[इसी समय घर से कराहने की आवाज आती है—तीनों चुप हो जाते हैं—'तुम दोनों बरामदे पर ठहरो', कहकर मधूलिका दौड़कर भीतर जाती है—]

अरुणध्वज : पानी, मधु!
मधूलिका : (पानी देती) पी लो।
अरुणध्वज : (पानी पीकर) अब भोर में कितनी देर है मधु?
मधूलिका : भोर होने ही जा रही है।
अरुणध्वज : मौसी भी नहीं आई?
मधूलिका : तुम चिल्ला पड़ते हो, उठने की कोशिश करते हो, मौसी कैसे आए भला।
अरुणध्वज : अब न चिल्लाऊंगा, न उठूंगा। मधु, मौसी के दर्शन करा।
मधूलिका : वादा करते हो न?
अरुणध्वज : तेरी कोई बात टाली है?
मधूलिका : अच्छा बुला लाती हूं, रथ आ गया है, वह पहुंच गई हैं।

[मधूलिका बरामदे पर जाती है—अम्बपाली को इशारे से ठहरने और चुप रहने को कह सुमना को लिए वह घर में जाती है—अम्बपाली अपने कान टट्टी से लगाए बरामदे पर खड़ी है—सुमना को देखते ही अरुण का चेहरा खिल पड़ता है—]

अरुणध्वज : मौसी, मौसी, प्रणाम।
सुमना : आह! बेटा! (वह अरुण से लिपटती और उसका माथा चूमती है)
अरुणध्वज : मौसी, कल मेरी शादी है, तुम अच्छी आई।
सुमना : (चुप, आंखों में आंसू)
अरुणध्वज : तुम रोती हो मौसी? मेरी शादी है, और तुम रोती हो! देखो, (छत की ओर उंगली उठाकर) वह मां स्वर्ग से बुला रही हैं।

वहीं शादी होगी ! तुमने भी कहा न था मौसी, अरुण, तू सयाना हुआ, वधू क्यों नहीं लाता ?

मधूलिका : मुझसे वादा कर चुके हो न ? चुपचाप सोओ, अरुण !

अरुणध्वज : (सुमना से) देखती हो, मौसी, मधु कहती है, चुपचाप सोओ। कल मेरी शादी है, आज कैसे चुपचाप सो जाऊं, मौसी ?

सुमना : चुप रहो, बेटा !

अरुणध्वज : चुप रहो, बेटा ! (छत की ओर देखता है) मां चुप रहूं ? बोलो, तुम बोलती क्यों नहीं मां ? (सुमना से) मौसी, मौसी, देखो, देखो, वह मां नाराज हो रही हैं ! ···मां, मां ! ···

सुमना : बेटा, बेटा, मेरी ओर देखो !

अरुणध्वज : मौसी, मौसी, ! तुम भी स्वर्ग चलो। मैं चलता हूं, मधु चलती है, तुम भी चलो ! (छत पर नजर से जाकर) मां, मैं आया, मां ! आया ··आया ! (दोनों हाथ ऊपर फैला देता है) मौसी, मौसी, छोड़ो मौसी ! मां बुला रही हैं—मां···मां···मां··· (चिल्लाने लगता है, उठने की कोशिश करता है)

मधूलिका : (उसके मुंह पर हाथ रखती) अरुण, चुप रहो अरुण !

अरुणध्वज : (झटका देकर उसका हाथ हटा देता है) मधु, छोड़ मधु ! मौसी, मौसी···आह, मां बुला रही हैं ! (गुस्से में पुकारता) तू नहीं छोड़ती मधु, तुम नहीं छोड़तीं मौसी ?

मधूलिका : (आंसुओं की धारा में)अम्बा आ रही है अरुण! शान्त हो, चुप हो !

अरुणध्वज : (अम्बा का नाम सुनते ही पूर्व-सा ही फिर सहसा शान्त होकर) अम्बा आ रही है, मधु ? मौसी, अम्बा आ रही है ?···नहीं, नहीं, अम्बा नहीं आएगी···अम्बा···मौसी, मां कहती हैं, मेरी दुलहन अम्बा ऐसी है···अम्बा ऐसी (मुस्कराता है) ···नहीं, नहीं, अम्बा नहीं आएगी वह क्यों आए ?···वह राजनर्त्तकी है—"मधु, मैं राजनर्त्तकी ! अरुण, मैं राजनर्त्तकी !···" नहीं, अम्बा नहीं आएगी ?

मधूलिका : मैं कह रही हूं, तुम जरा चुप हो रहो—अम्बा आई ही।

अरुणध्वज : (फिर मुस्कराता) अम्बा आई है।···अम्बा···आई है !

(चौंककर दरवाजे की ओर इशारा करता) हां, हां, अम्बा आई तो···वह अम्बा आई—अम्बा अरे, यह क्या ?···मधु···मधु ··तीर···तीर···अम्बा की ओर तीर ··अम्बा की ओर तीर···बचा रे, बचा···तीर···तीर··· तीर···

[आंखें फाड़ता चिल्लाता, वह पूरे जोर से उठना चाहता है—मधूलिका और सुमना उसे पकड़ती हैं—दोनों स्त्रियों की आंखों से आंसू बह रहे हैं—इधर इन बातों को सुनकर बरामदे पर अम्बपाली जार-बेजार हो रही है, उसे हिचकियां पर हिचकियां आ रही हैं—लेकिन मुंह से आवाज नहीं निकलने देती—]

सुमना : बेटा, अरुण बेटा !

अरुणध्वज : (कुछ शान्त होकर) मौसी···मां !···मौसी, मां ! मां, मां···मौसी, मौसी···(जैसे फिर वायु का दौरा आ जाए) देखो, देखो मौसी··· अरे, तीर, तीर···अम्बा पर, अम्बा पर···तीर···तीर···छोड़ो मौसी · छोड़ मधु···तुम नहीं छोड़ती···तू नहीं छोड़ती···छोड़··· छोड़···

[अचानक न जाने उसमें कहां से ताकत आ जाती है—वह दोनों औरतों को झटके दे देता है और आधा खड़ा हो जाता है—फिर दोनों उससे लिपट जाती हैं—इतने में मधूलिका का ध्यान उसकी गर्दन पर जाता है—टांका टूट जाने से गर्दन की पट्टी पर खून की धार बही जा रही है—मधूलिका चीख उठती है—]

मधूलिका : मौसी, खून ! टांका टूट गया मौसी ! हाय! अम्बे, अम्बे ! वैद्य-वैद्य !

[अब अम्बपाली से नहीं रहा जाता है—वह घर में घुसती है और 'अरुण-अरुण' चिल्लाती उससे लिपटी जाती है—

अरुण अम्बपाली की आवाज सुनते ही ढीला पड़ जाता है, उसको देखते ही उसकी आंखें चमक पड़ती हैं—वह बिछावन पर लेट जाता है

और उसके मुह से निकल पड़ता है–

अरुणध्वज : अम्बे, अम्बे !

अम्बपाली : अरुण, हाय अरुण !

मधूलिका : (खून से लथपथ पट्टी पर हाथ रखे) ~~अम्बे—अधमरा~~ अम्ब जा, जा—अम्बे, अम्बे !

[अम्बपाली उठना चाहती है—अरुण हाथ पकड़ लेता है—उस हाथ को वह अपनी छाती पर खींचकर ले जाता है—आंखों को मूंदते हुए वह धीमे-धीमे कहता है—]

अरुणध्वज : अम्बे, तू आ गई···तू भी चल अम्बे···चलेगी, चल··· (धीरे-धीरे आंखें खोलते और छत की ओर देखते हुए) देखती है अम्बे··· मां बुला रही हैं···मां···मां···मां···

[उसके होठों पर मुस्कान की रेखा खिंच जाती है—चेहरे पर एक ज्योति दौड़ जाती है—फिर खुली आंखें खुली ही रह जाती हैं और सांस का चलना एकाएक रुक जाता है—इस ओर सबसे पहले सुमना का ध्यान जाता है—वह चिल्ला उठती है—]

सुमना : हाय, हाय ! यह क्या हुआ ? अरुण ! अरुण !

मधू० अम्ब० : (एक साथ ही) अरुण ! अरुण !

सुमना : (उसकी नाक के सामने हाथ ले जाकर) सर्वनाश अम्बे ! अरुण नहीं रहा मधु !

[सुमना और अम्बपाली अरुण की लाश से लिपट जातीं 'अरुण' 'अरुण' चिल्लाती हैं—लेकिन अचानक मधूलिका की मुख-मुद्रा गम्भीर हो जाती है—वह गम्भीरता से बोलती है—]

मधूलिका : सुन, अम्बे ! (जोर से) अम्बे सुन !

अम्बपाली : (आंसुओं से भींगा चेहरा उठाती) मधु, अरुण ! हाय ! अरुण !···

मधूलिका : रोने से न बनेगा ! मैं अब चली !

अम्बपाली : मधु ! मधु !!
मधूलिका : मधु, मधु नहीं ! मधु चली। यह तेरा बोझ था अम्बे ! इसकी ज़िन्दगी मैंने ढोई, अब लाश तू ढो !
अम्बपाली : मधु, मधु ! यह क्या मधु ? ओहो ! (रोती है)
मधूलिका : हां, जो ज़िन्दगी नहीं ढोता, उसे लाश ढोनी पड़ती है अम्बे! तू लाश ढो, तब समझ सकेगी, किसी की ज़िन्दगी ढोना क्या चीज़ है ! मैं चली मौसी, प्रणाम !
सुमना : बेटी ! बेटी !

[मधूलिका झट घर से निकलती है—तीन-चार डग में ही वह आंगन में आ जाती है—'मधु-मधु' पुकारती अम्बपाली उसके पीछे आती है—मधूलिका मुड़कर—'ज़िन्दगी नहीं ढोई, तो लाश ढो, कहती आंगन से बाहर हो अन्धकार में अन्तर्धान हो जाती है—]

दो

[अम्बपाली का सोने का कमरा—वह पलंग पर लेटी है—एक कोने में धुंधली रोशनी टिमटिमा रही है—वह बार-बार करवटें बदलती और आखिर आंखें खोलती हुई उठ बैठती है—फिर पलंग से नीचे आकर टहलने लगती है—

थोड़ी देर टहलकर फिर पलंग पर जाती है और सोने की चेष्टा करती है—आंखें मूदती, करवटें बदलती और हार कर, नींद न आती देख, फिर पलंग से नीचे आती है—दीवार पर जो वीणा टंगी है, उसे लेकर बजाने लगती है—

उसका वेष बिलकुल शृंगार-भूषा से हीन है—बाल खुले, चेहरा उदास—करुणा की मूर्ति-सी वह दीख पड़ती है—]

अम्बपाली : (वीणा पर वह गाती है—)

टूटते जब बीन के हैं तार !
उंगलियों का हो भले नर्तन
कण्ठ का स्वर दे मनोहर स्वन,
ताल हो, लय हो,
मूर्च्छना हो, मींड़ हो, संगीत की जय हो।
किन्तु, फिर उठती नहीं वह प्राणमय झंकार,
जो बहाती जगत में रसधार,
और लाती जिन्दगी में भावना का ज्वार,
प्रेम के गुंजार के बदले—
प्रकट होता विषम हाहाकार !
टूटते जब बीन के हैं तार !

[गाते-गाते उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बही जा रही है—

उसी समय चयनिका दरवाज़े से झांकती और भीतर आती है—वह होले पांव आकर उसके पास आकर खड़ी होती है और अम्बपाली रोए और गाए जा रही है—जब गाना समाप्त होता है, चयनिका कहती है —]

चयनिका : भद्रे, आज भी अब तक नहीं सोईं ?
अम्बपाली : (चौंककर आंसू पोंछती) ओहो, चुन्नी ! कितनी रात गई रे !
चयनिका : जागना क्या उचित है, आर्ये !
अम्बपाली : शुक्रतारा ! उस रात भी शुक्र तारा उग चुका था ! (उसांस लेती है, लेकिन, तुरत महसूस करती है कि वह क्या बोल गई और बात बहलाने को सोच रही है कि चयनिका पूछती है—)
चयनिका : (साश्चर्य) --किस रात भद्रे ! यह क्या बात है कि जबसे उस रात मौसी आईं और आप उनके साथ गईं, तबसे आप ज्यों ही अकेली हुईं कि रोने लगी। यह रात-दिन का रोना !!
अम्बपाली : रात-दिन का रोना ! चयनिके, विधाता ने मानवता को भाषा क्यों दी ? क्यों न यह भी कुररी-सी रोती, कोयल-सी कुहकती, पण्डुक-सी कुहरती और बुलबुल-सी चीखती अपनी ज़िन्दगी बिता देती है ! बातों में इसे कौन-सा रस मिलता है, चुन्नी !
चयनिका : कोई क्षण ऐसा भी होता होगा आर्ये, जब कुररी, कोयल पण्डुक या बुलबुल की ज़िन्दगी में आनन्द की रसधारा बहती होगी। अगर ऐसी बात नहीं होती, तो वे जिन्दा नहीं रह पाती भद्रे !
अम्बपाली : आनन्द की रसधारा ! आनन्द की रसधारा की तह में क्या है, क्या अम्बपाली से बढ़कर कोई जानता है ? जिस तरह अंगूर को तोड़कर, सड़ाकर शराब बनाई जाती है—उस हरे-हरे, गोल-गोल, रस से शराबोर, मिठास से लबालब गुच्छों को पुराने बरतन में रखकर, ढककर, ज़मींदोज़ कर, सड़ा-गलाकर आदमी शराब का नाम देता और उसके—गले को जलानेवाले, झुलसानेवाले घूट पीकर मत्त बनता, पागल बन जाता है; आनन्द की रसधारा भी कुछ ऐसी ही चीज़ है चयनिके ! यह रसधारा नहीं, मृग-मरीचिका है। यदि मानवता इस मृग मरीचिका में न फंसी होती,

तो न जाने कब उसने देवत्व प्राप्त कर लिया होता।

चयनिका : मैं इन बड़ी-बड़ी बातों को नहीं समझ पाती भद्रे ! लेकिन, यह दिन-रात का रोना—उफ् !

अम्बपाली : फिर वही बात ! रुदन इतनी घृणा या उपेक्षा की चीज नहीं है, चयनिके ! मानती हूं, एक जमाना था, मैं भी उसे इसी दृष्टि से देखती थी, लेकिन तब मैं भ्रम में थी चुन्नी ! जिस तरह दुनिया का पाप-ताप धोने को गंगा भू पर अवतीर्ण हुई, उसी तरह मानवता के पाप-ताप, दर्द-जलन धोने-बुझाने को विधाता ने आंसुओं की गंगा-यमुना बहाई है। हमारे हृदय-कमण्डलु में संचित यह पावन धारा, किसी दर्दीले भगीरथ की संवेदना या कातर याचना पर, अचानक उर्ध्वगामी होती, मस्तक-हिमाचल पर लहराती, फिर काल-ऐरावत के दो दांतों द्वारा दो आंखों की राह, गाती हर-हर करती, गिरती है और अपनी उज्ज्वल युगल धारा में जग की सारी कालिमा और किल्विष को बहा ले जाती है ! यदि किसी की आंखों में आंसू देखो, उसे नमस्कार करो ! आंसुओं पर घृणा या उपेक्षा संसार की सबसे बड़ी नास्तिकता है, चयनिके ?

चयनिका : उपेक्षा या घृणा की धृष्टता इस अनुचरी से क्या हो सकती है, भला ! मैं तो देवी के आंसुओं को देखते ही धीरज खो देती हूं। इधर तो आप दर्पण भी नहीं देखती, नहीं तो अपना चेहरा देख पातीं।

अम्बपाली : चेहरा ! चेहरे का रहस्य भी अच्छी तरह समझ चुकी हूं चुन्नी। गालों के गुलाब में कितनी गन्ध है, भवों की कमान में कितनी तीरन्दाज़ी है; अधरों के बिम्ब में कितना रस है; दांतों के दाड़िम में कितनी मिठास है; नासिक के शुक में कितनी उड़ान है, आंखों के खंजन में कितनी परवाज़ी है; ललाट के चांद में कितना अमृत है और लटों के सांप में कितना ज़हर है—सब देख चुकी, आजमा चुकी, जान चुकी ! उसकी 'हां' देखी उसकी 'ना' देखी—उसकी 'हां देखी—मगधपति के सामने' उसकी 'ना' देखी—भगवान् बुद्ध के सामने ! और लोग तो दोनों छोरों के बीच में चक्कर काटते रह गए, चयनिके !

चयनिका : देवी, आपमें अपने से, संसार से इतनी उदासीनता, इतनी विषण्णता क्यों पा रही हूं ?

अम्बपाली : अपने से उदासीनता, संसार से उदासीनता दोनों का एक ही मतलब है, चयनिके ! जब तक अपने से उदासीनता न हो, संसार से उदासीनता हो ही नहीं सकती। और 'संसार' के धक्के ही तो अपने से उदासीनता पैदा करते हैं। 'स्व' और संसार का एक अजीब गोरखधन्धा आदिकाल से चला आ रहा है ! ये एक दूसरे को प्रभावित किया करते हैं और इनकी क्रिया-प्रतिक्रिया के भंवर में मानव-मन तुच्छ तिनके-सा डूबता-उतराता रहता है ! अम्बपाली अब तक भंवर के ऊपर नाच रही थी, अब वह उसकी चपेट में गोते खा रही है।

चयनिका : लेकिन, क्या अनुचरी को इतना भी हक नहीं है कि वह उस बात को जाने, जिसने वैशाली की राजनर्त्तकी के विशाल हृदय को भी यों व्यथित-द्रवित कर दिया है !

अम्बपाली : तुम्हें सब कुछ जानने का हक है, चयनिके ! तू ही है, जिससे मन की बातें कह कर दिल हल्का करती आई हूं ! लेकिन दुनिया में कुछ ऐसी बातें हैं, जो कही नहीं जा सकतीं और जिनके न सुनने में ही कल्याण है।

चयनिका : तो देवी रोया करें और मैं चुपचाप देखा करूं ? क्या मैं पत्थर की बनी हूं, क्या मेरे हृदय नहीं ? इससे अच्छा है, चयनिका की मुश्कें बांध दें, उसे तहखाने में डाल दें कि वह घुट-घुटकर वहीं मर जाए ! (उसका गला भर आता है, आंखें उमड़ पड़ती हैं)

[अम्बपाली वीणा को पलंग पर रख देती और हाथ पकड़ कर चयनिका को अपने निकट बैठाती है— फिर उसकी ठुड्डी हाथ में ले दुलराती हुई कहती—]

अम्बपाली : पगली, तू ऐसा करेगी, तो मेरी गति क्या होगी ? जब नाव डूबती है, तब सिर का घास का गट्ठर ही—तुच्छ तिनकों का वह समूह ही—उसके ढोने वाले के प्राण का रक्षक सिद्ध होता है। कम-से-कम कुछ देर तक उसे पकड़कर वह अपने को बचाए रखता ही है। अम्बपाली की नाव टूट चुकी है, चयनिके ! वह अपनी जल-समाधि स्पष्ट देख रही है— जल-समाधि या सम्यक् समाधि ! (सामने दीवार से सटी बुद्ध की मूर्ति

पर उसकी नजर जाती है और वह उसे सिर नवाती है)

चयनिका : (आश्चर्यमुद्रा में) तो क्या आप बौद्धधर्म स्वीकार करने जा रही है ?

अम्बपाली : अब समझ में आया है, चुन्नी, कि आदमी क्यों विराग लेता है; क्यों भिक्षु बनता है। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जो स्वभाव से ही दुनिया के रागरंग से पूरे होते हैं। उनका मन प्रशान्तसागर होता है, जिसमें कितनी ही नदियां पानी डालें, जिसके ऊपर कितनी ही कलाओं से चन्द्रमा चमके, लेकिन जिसमें न तो बाढ़ आती है, न तरंगें उठती हैं—(उंगली से बुद्ध मूर्ति को दिखाती) देख, उस ओर ! कैसी शाश्वत शान्ति ! कामना या भावना की एक रेखा भी कहीं पाती है ? लेकिन, ज्यादातर मानव-मन झरने की तरह होता है, जो शुरू में कलकल-छलछल करता, तरंगों से युक्त, फेनों से भरा, कभी इधर, कभी उधर भटकता-बहकता चक्कर काटता, गिर्दावें भरता, अन्ततः नदी या नद में परिणत हो, अपनी गति से आप ही क्षुब्ध, अपनी उठाई हुई लहरों से आप ही थपेड़े खाकर हाहाकार, आर्तनाद कर उठता है और त्राहि-त्राहि करता किसी सागर में अपने को रख देता है। हां, यहां भी भाग्य पर निर्भर है कि वह प्रशान्त-सागर प्राप्त करता है या फिर किसी वंगोपसार की घूर्णि में ही हाहा खाता रहता है। संन्यास या भिक्षुपन कुछ नहीं, थकी हुई आत्मा का आत्मसमर्पण है चयनिके ! अम्बपाली भी थक चुकी। अब इससे यह बोझ नहीं ढोया…

[वह अचानक रुक जाती है—छत की ओर देखती है—उसके भय-विस्फारित नेत्रों की टकटकी देख चयनिका कांप उठती है—देखते-देखते अम्बपाली के गाल आंसुओं से तर हो जाते हैं—चयनिका घबराती हुई कहती है—]

चयनिका : आर्ये, आर्ये ! आप क्या देख रही हैं ?

अम्बपाली : (अपने को संभालती आंसू पोंछती) क्या देख रही थी ! अच्छी बात है, चुन्नी, तू नहीं देख पाती। (थोड़ा रुककर) अच्छा, तूने किसी से प्रेम किया है, रे !

चयनिका : (लज्जा से गड़-सी जाती है) आर्ये !

अम्बपाली : तू सकोच कर रही है। ठीक ही तो। इससे बढ़कर बेवकूफी का सवाल और क्या हो सकता है! 'तूने प्रेम किया है!' जैसे प्रेम कहने की चीज हो। जो जवान पर आए, वह भी क्या प्रेम है? हमारे ऋषियो ने कहा है, सुकर्म को जिह्वा पर मत लाओ! जिह्वा पर अग्निदेव हैं, वह उसे जला देंगे, भस्म कर देंगे। बहुत ही सही चयनिके! कोई भी पावन चीज जिह्वा पर नहीं लानी चाहिए! फिर प्रेम! जिह्वा अग्नि है, तो प्रेम बर्फ। वह तो उसकी आंच से ही गल जाती है! राधा किसी से अपनी प्रेमव्यथा कहने गई—हां, उसका मूक प्रेम कितने कवियों की वाणी का शृंगार बन गया और अनन्त काल तक बनता रहेगा। यही प्रेम की महत्ता है! इसी वैशाली में रह कर अरुण क्या अम्बपाली से अपना प्रेम कहने आया और हमेशा उसके साथ छाया-सी घूमती हुई मधूलिका ने अरुण से अपना प्रेम कहा! (उसका गला भर आता है)

चयनिका : भद्रे, यह सब आप क्या कह रही हैं?

अम्बपाली : चुप रह चयनिके, चुप रह। मौसी ने कहा था, यह अभिमान नहीं, आत्मवंचना है, अम्बे! अब उनके कथन की सचाई मालूम हो रही है, शृंगार, संगीत, उत्सव—ये सब क्या चीजें हैं, तू जानती है? यों ऊपर से देखने पर तो आत्मप्रदर्शन के साधन मालूम होते हैं, लेकिन जरा गहरे जा, तो मालूम होगा, इनके द्वारा आदमी अपने को भुलाने की चेष्टा करता है। अपनी शारीरिक त्रुटि को शृंगार से ढकना चाहता है, अपने हृदय के हाहाकार को वीणा के गुंजार में छिपाना चाहता है और अपने दुःख-शोक को उत्सव मे विलीन करना चाहता है। उफ् मानव, मानव तूने अपने को धोखे में रखने के लिए क्या-क्या न प्रयत्न किए! लेकिन, हाय रे, मानव! अभिशाप ने कभी तेरा साथ न छोड़ा। वह छाया बन कर तेरे पीछे लगा है, पड़ा है, ज्यों-ज्यों तू प्रकाश की ओर दौड़ता है, वह और भी स्पष्ट और लम्बा होता जाता है! अम्बपाली, अम्बपाली, इतने दिनों तक तू जिसे भुलाए रही, उसने एक दिन तेरी सारी हेकड़ी भुला दी। (अपने हाथों से चेहरा ढक लेती है) उफ् आह!

चयनिका : (सिसकियां भरती) भद्रे···भद्रे!

अम्बपाली : (चेहरे से हाथ हटाती है, सारा चेहरा आंसू में भीगा है)

चुन्नी चुन्नी ! ...'समझा तू सोने को कहेगी ! मेरी प्यारी बच्ची, तेरी आज्ञा सिर आंखों पर (उसकी ठुड्डी पकड़ती और चूमती है) लेकिन, चयनिके, अम्बपाली के सोने के दिन चले गए। अब तो उसके कन्धों पर एक थाती दे दी गई है ! उफ् री निठुर थाती ! (फिर छत की ओर देखती) मधु-मधु, तू यह क्या कर गई रे ! मुझसे यह नहीं ढोई जाती है, मधु ! 'जो जिन्दगी नहीं ढोता, उसे लाश ढोनी पड़ती है !' काश, तू जान पाती, मैंने जिन्दगी भी लाश की तरह ही ढोई है ! !

तीन

[वैशाली का कूटागार — एक ऊंचे टीले पर बना एक रमणीक विहार '
— विहार का पश्चिमी बरामदा —

सूरज डूबने जा रहा—डूबते हुए सूरज से ऐसी तिरछी लाल किरणें फूट रही हैं, जैसी भोर में दिखाई पड़ती हैं—हां, भोर की किरणों में जहां सुनहलापन अधिक होता है, इनमें लाली अधिक है—

कुछ चिड़ियां इस लाली-भरी पृष्ठभूमि में उड़ती क्षितिज की ओर जा रही हैं—वे ऐसी मालूम होती हैं, मानों लालसागर में बच्चों ने रंगीन कागज की छोटी-छोटी नावें बहा दी हों—

डूबते हुए सूरज की इस लाली से बरामदे का यह हिस्सा अजीब सुनहला लग रहा है—बरामदे की एक-एक चीज दिप-सी रही है—सूरज की ओर रुख किए ध्यानमग्न बैठे गोरे भगवान् बुद्ध तो बिलकुल सोने की मूर्ति-से लग रहे हैं। शरीर में जरा भी स्पन्दन तक नहीं अनुभव होता—

भगवान बुद्ध से थोड़ी दूर हट कर भिक्षुप्रवर आनन्द बैठे भगवान बुद्ध का चेहरा विमुग्ध होकर निहार रहे हैं—

अम्बपाली आती है—बिलकुल सादा है वेश उसका—हौले-हौले भगवान के निकट पहुंच उन्हें सिर झुका मौन-ही-मौन प्रणाम करती और आनन्द के इशारे पर कुछ दूर हट कर बैठ जाती है—

कुछ देर में भगवान् बुद्ध आंखें खोलते हैं—सूरज की ओर देखते हैं—अम्बपाली उठ कर फिर उन्हें प्रणाम करती है—वह मुस्करा पड़ते हैं, कहते हैं —]

भगवान् बुद्ध : आप आ गईं, भद्रे !
अम्बपाली : हां, भगवान् !
भगवान् बुद्ध : आपका यह वेश ?

अम्बपाली : मैं देख चुकी, भगवान्, आदमी दो में से एक का ही शृंगार कर सकता है—तन का या मन का।

भगवान् बुद्ध : सबसे बड़ा सत्य वही है, भद्रे, जिस पर आदमी स्वयं अपने अनुभवों से पहुंचे।

अम्बपाली : लेकिन, मेरे ऐसे अनुभवों से पार होने का दुर्भाग्य किसी को भी प्राप्त न हो भगवान् !

भगवान् बुद्ध : (मुस्कराते हुए) वैशाली की राजनर्त्तकी और दुर्भाग्य !

अम्बपाली : (खिन्न स्वर में) भगवान् मुर्दे को कांटों में मत घसीटिए ! जो जिन्दगी-भर दीपशिखा-सी खुद जलती और दूसरों को जलाती रही, अगर उसकी भी जिन्दगी सौभाग्य ही हो, तो फिर दुर्भाग्य कहेंगे किसे, भगवान् ?

भगवान् बुद्ध : जब वासनाओं से विरक्ति आ जाए, तब समझना चाहिए, अन्तर का देवता जग उठा।

अम्बपाली : अन्तर का देवता क्या है, मैं नहीं जानती भगवान्। हां, मेरे अन्तर में आग लगी है; जो मुझे जला रही है, झुलसा रही है, यह अनुभव करती हूं। हृदय में जैसे चिनगारियां फूटती रहती हैं, नसों में, शिराओं में खून की जगह जैसे बिजली दौड़ती रहती है ! जागरण ! जैसे वृश्चिक-दंशन ! निद्रा, जैसे शूल-शयन ! यह जिन्दगी है या मौत ? (कातरता से) मुझे बचाइए भगवान् ?

भगवान् बुद्ध : कोई किसी को बचा नहीं सकता, भद्रे ! जहां आग लपट है, उसके निकट ही पानी का झरना है। अशान्ति के कण्टक-कानन में ही शान्ति की चिड़िये का घोंसला है। उस झरने, उस घोंसले को स्वयं खोजना होता है। दूसरा, ज्यादा-से-ज्यादा, रास्ता-भर बता सकता है।

अम्बपाली : जैसे इस मार्ग-दर्शन का कोई महत्व ही नहीं ?

भगवान् बुद्ध : है; तभी तो तथागत को घर छोड़कर जंगल-जंगल की खाक छाननी पड़ी। बड़ी तपस्या, बड़ी साधना के बाद उस मार्ग का पता लगाया है; लेकिन जो मार्ग उसे मालूम हुआ, उसका निष्कर्ष सिर्फ इतना

ही है कि ऊपर का कोई देवता और नीचे का कोई आदमी किसी को निर्वाण या मुक्ति नही दिला सकता। उस मार्ग पर स्वयं चलना होगा, दूसरा कोई उपाय नही।

अम्बपाली : आज उसी मार्ग की दीक्षा लेने आई हूं, भगवान्! मार्ग बताइए, मैं चलने को तैयार हूं।

भगवान् बुद्ध : भद्रे, जरा सोचिए, आप यह क्या कर रही हैं?

अम्बपाली : सोच चुकी हूं, भगवान्! अच्छी तरह सोच चुकी हूं। याद है, आपने कहा था—'तुम विचित्र नारी हो।'

भगवान् बुद्ध : (मुस्कराते हुए) उसकी एक झलक आज भी देख रहा हूं! निराशाएं हमें कहीं भी उड़ा ले जा सकती हैं।

अम्बपाली : सिर्फ निराशा की बात मत कहें, भगवान! निराशा का प्रतिकार अम्बपाली जानती है। अगर भगवान् ने उस यात्रा में नर्तकी पर कृपा न की होती, तो··· (रुक जाती है)

भगवान् बुद्ध : तो क्या? जरा सुनूं। (फिर मुस्कराते हैं)

अम्बपाली : (तेजस्विता के साथ) जो कायर होते हैं, वे मोड़ पर रुक जाते में। जिनके हृदय में साहस है, वे एक पथ पकड़ते और चल देते हैं, चाहे वह पथ जहा ले जाए—स्वर्ग या नरक—ये एक ही सिक्के के दो रुख हैं, भगवान्!

भगवान् बुद्ध : (गम्भीरता से) सिर्फ तेजस्विता बडी खतरनाक चीज है, आर्ये! उसके मुंह में साधना की लगाम होनी चाहिए; नहीं तो न जाने वह किस अन्ध गुफा में ले जाकर पटक देगी! राजनर्त्तकी, सावधान!

अम्बपाली : (प्रकृतिस्थ होकर) जिसने एक बार प्रकाश की किरण देख ली; उसकी आखें धोखा नहीं खा सकती हैं। भगवान्! इसी से आज वैशाली की राजनर्त्तकी भिक्षुणी बनने को भगवान् के चरणों की शरण में आई है। (घुटने टेककर सिर झुका देती है)

भगवान् बुद्ध : (साश्चर्य) भिक्षुणी बनने को!

अम्बपाली : हां, अम्बपाली ने तय कर लिया कि अब वह अपना शेष जीवन धर्ममार्ग पर चलने और धर्म का सन्देश घर-घर पहुंचाने में ही बिताएगी।

भगवान् बुद्ध : लेकिन तथागत के धर्मसंघ में भिक्षुणी का विधान नहीं।
अम्बपाली : क्या कहा, भगवान् के धर्ममार्ग में नारियों के लिए स्थान नहीं?
भगवान् बुद्ध : नारियों के लिए स्थान नहीं, ऐसा नहीं कह सकते। हर आदमी—स्त्री-पुरुष—तथागत के धर्ममार्ग पर चल सकता है। लेकिन, नारियों के लिए भिक्षुणी बनना······
अम्बपाली : (उत्तेजना में बीच ही में बात काटकर) उचित नहीं है, यही न कह रहे थे भगवान्? क्या मैं पूछ सकती हूं, क्यों उचित नहीं है?
भगवान् बुद्ध : उत्तेजित मत हो भद्रे! हर क्यों का जवाब नहीं होता।
अम्बपाली : लेकिन, जिस बात का सम्बन्ध किसी की जिन्दगी से है—उसके अस्तित्व की 'हां' और 'ना' से है, उसे हक हासिल है कि वह ऐसा सवाल करे और यह है कि उसे जवाब दिया जाए।
भगवान् बुद्ध : आपको मालूम ही होगा, देवी प्रजावती और राहुलमाता यहां आई हुई हैं।
अम्बपाली : देवी प्रजावती धन्य है, जिन्हे भगवान् की मौसी होने, और उन्हे गोद में खिलाने का सुअवसर मिला और राहुलमाता यशोधरा तो इतिहास में अमर ही हो चुकीं।
भगवान् बुद्ध : इन दोनों ने भी यही इच्छा प्रकट की थी, किन्तु तथागत ने उन्हें 'नाही' कह दी।
अम्बपाली : आपने 'नही' की होगी, भगवान! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हमेशा से अपने पर अत्याचार होता आया है—साधारण जनों द्वारा और महात्माओं द्वारा भी! लेकिन, भगवान् जिस आसानी से देवी प्रजावती और यशोधरा को 'ना' कह सकते थे और वे मान जा सकती थीं, उतनी आसानी से न तो आप अम्बपाली को 'नाही' कह सकते हैं और न उसे मना सकते हैं!
भगवान् बुद्ध : लेकिन, मेरा लाचारी जो है?
अम्बपाली : क्या अभागी अम्बपाली से भी बढ़कर? (उसांसें लेती है)
भगवान् बुद्ध : आपकी लाचारी?
अम्बपाली : (सहसा उसके चेहरे पर विषाद छा जाता है, आंखें भर

आती हैं, गला भर्रा जाता है) भगवान् मत कहलाइए ! आपसे छिपा क्या है ? दिन-रात लाश ढोते-ढोते तंग आ चुकी। जब तक जगी रहती हूं, उसके बोझ से कन्धा टूटता, दम फूलता रहता है। एक तो दर्द के मारे नींद नही आती, यदि कदाचित आई तो कन्धे का बोझ सीने पर होता है ! सांस घुटने लगती है, कलेजा फटने लगता है—चिल्लाना चाहती हूं, आवाज नहीं निकलती घिग्घी बंध जाती है। व्याकुलता की पराकाष्ठा में जब नींद टूटती है, तब बिछावन, तकिया, सब तर-ब-तर पाती हूं। भगवान्, भगवान् मुझे··· (अपनी हथेली से मुंह ढककर हिचकियां लेती है)

भगवान् बुद्ध : धीरज, भद्रे, धीरज !

अम्बपाली : (भर्राई आवाज में ही) धीरज की भी हद होती है, भगवान् आह, विधाता वही धीरज नारियों के दिल में दिए होता, जिसे पुरुषों के हृदय में इतनी प्रचुरता से दिया है। जिस आसानी से भगवान् राहुलमाता को प्रसूतिगृह में छोड भागे, उसी आसानी से राहुलमाता भगवान् को 'ना' के बाद भी उन्हें छोड़ पातीं !

भगवान् बुद्ध : भद्रे, भावना पर यों न बहें; विवेक से काम लें। जरा सोचें—तथागत के धर्म का मध्यम मार्ग तो सबके लिए खुला है, लेकिन जहा तक भिक्षुसंघ की बात है··· (रुक जाते हैं)

अम्बपाली : धर्म का मध्यम मार्ग तो समझी, लेकिन उसका मतलब मार्ग के मध्य में जाकर रुकना नहीं हो सकता, भगवान् ! फिर, अम्बपाली जिस राह पर चलेगी, पूरी चलेगी ! मध्य में रुक नहीं सकती ! बहुत धोखा खा चुकी हूं भगवान् ! अब मैं अपने को ज्यादा धोखा नही दे सकती।

भगवान् बुद्ध : तब !

अम्बपाली : मुझसे मत पूछिए, मुझे इस लाश को उतारना पड़ेगा, भगवान् ! या तो इसे पीता वस्त्र उतार सकता है, या·········(अचानक यह अधर की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने लगती है) देखिए, भगवान्, वह देखिए ! मैं बचपन से ही सपने देखती आ रही हूं, लेकिन, दिन-रात यह सपने का दृश्य ! उफ् ! मैं इसे ढो नही सकती, जिन्दा रह नहीं सकती। मुझे आत्महत्या के महापाप से बचाइए भगवान् ? (उसकी आंखों से आंसू

की धारा बहने लगती है; सिर से पांव तक कांपकर वह चेहरे को हथेलियों से ढकती, फिर जमीन पर घुटने टेक अपने हाथों को बुद्ध के चरणों की ओर पसार देती है)

भगवान् बुद्ध : आर्ये, आर्ये !

अम्बपाली : भगवान् ! भगवान् !

[भगवान् बुद्ध उसके इस आत्मसमर्पण से व्याकुल हो जाते हैं—समझ में नहीं आता कि उससे क्या कहें—वह 'आनन्द' की ओर देखते हैं—आनन्द भगवान् का असमंजस देख अम्बपाली के निकट आकर उसे उठाते हुए कहते हैं—]

आनन्द : आर्ये, उठें आज जाएं—कल फिर भगवान् के दर्शन करें।

अम्बपाली : (सिर उठाती है, आंखों से आंसू बह रहे हैं) भगवान् जाऊं ? आपकी यह आज्ञा है ?

आनन्द : यह भगवान् की ही आज्ञा है।

अम्बपाली : हाय रे मेरा दुर्भाग्य ! मेरे लिए भगवान् आज ही प्रतिमा बन रहे हैं ! आह ! (बुद्ध के मुंह की ओर एकटक देखती है—आंसू अनवरत जारी हैं)

भगवान् बुद्ध : (गम्भीर वाणी में) भद्रे ! श्रद्धा प्रतिमा को भी बोलने को लाचार करती है—उससे वरदान लेती है तुम अपने पर विश्वास रखो, सभी साधन तुम्हें आप ही प्राप्त होंगे !

[अम्बपाली 'भगवान्, भगवान्' कह, घुटने टेक, जमीन से सिर सटा कर भगवान् बुद्ध को प्रणाम करती है; फिर हाथ जोड़े ही मुड़कर चलती है—सूरज डूब चुका है, लाल आसमान के ललाट पर लाल मंगलतारा चमक रहा है—अम्बपाली मुड़ते समय उसे देखकर प्रणाम करती है और हाथ जोड़े ही वहां से धीरे-धीरे चल देती है—उसके चले जाने पर भगवान् बुद्ध आनन्द से कहते हैं—]

भगवान् बुद्ध : आनन्द !

आनन्द : भगवान !

भगवान् बुद्ध : अम्बपाली को मैं जानता हूं, आनन्द ! इसके संघ में आने से संघ को लाभ ही होगा। नारियों द्वारा तथागत का सन्देश घर-घर में ही नहीं, दूर-दूर देशों तक फैलेगा, यह भी जान रहा हूं। लेकिन, मैं आते वाले दिनों से डरता था। अभी तो ज्वार के दिन है, लेकिन जब भाटा आता है, अच्छा पानी भी प्रवाह से दूर होकर गंदला हो जाता है, आनन्द ! इसी लिए, मैं नारियों को संघ मे नहीं लेना चाहता था। मुझे डर है, आगे चल कर संघ की यह बात बड़ी कमजोरी साबित होगी और तथागत का धर्म जितने दिनों संसार में रहता, उसके आधे दिनों तक ही रह पाएगा।
आनन्द : तो मना कर दीजिए न ?
भगवान् बुद्ध : आह ! मैं मना कर पाता ! मैं देवी प्रजावती को, राहुल माता को 'नाही' कर सका था, किन्तु इसे नहीं कर सका। यह, विचित्र नारी है, आनन्द ? उस बार इसने कहा था—मैं भगवान् बुद्ध पर विजय प्राप्त करूंगी। यह आज सचमुच जीत गई !

चार

[सारी वैशाली निःस्तब्ध सोई हुई है—सिर्फ जाग रहे हैं आकाश में कुछ तारे, जिनकी ज्योति भी उदयाचल की धीमी लाली की आभा से मन्द पड़ती जाती है—और वृक्षों पर जग पड़े हैं अपने खोतों में निश्चिन्त सोये कुछ पंछी—हां, कुछ ही और वे भी एकाध बार ही चोंच खोलकर चहचह कर उठते हैं; क्योंकि अभी भोर होने में कुछ देर है—पृथ्वी पर कभी-कभी; यहां-वहां से गायों की रंभाई सुनाई पड़ती है; जिसका उत्तर बछड़े का 'आं-आं' देता है—

अट्टालिकाएं सोई हैं—सड़कें सोई हुई हैं—हाट-बाजार सब पर नींद की हल्की छाया पड़ी हुई है—हां; हल्की ही, क्योंकि उषा के आगमन की धमक कुहेलिका की तहों को एक-एक कर दूर कर रही है—

इस समय दूर से सुरीली आवाज सुनाई पड़ती है—वह पहले एक ही ध्वनि मालूम पड़ती है; किन्तु धीरे-धीरे वह ध्वनि; ध्वनि-समूह में बदल जाती है—अब स्पष्ट मालूम हो रहा है; कुछ कोकिलकण्ठियां गाती हुई आ रही हैं—गीत की कड़ियां क्रमशः स्पष्ट होती जा रही हैं—

बहुजन हिताय;
बहुजन-सुखाय
नर उठो, नारियों उठो, उठो,
झांकी यह झिलमिल स्वर्ण-किरण,
निद्रा खोने, तन्द्रा धोने—
वह चली पुलकमय मलय-पवन
सब उठो, जगो
निज कर्म लगो,
सपनों की दुनिया दूर जाए

बहुजन-हिताय,
बहुजन-सुखाय,
दुनिया उभ-चुभकर डूब रही,
फैला आंसू का प्रलय-ज्वार
आहों की आंधी में उजड़ी
जाती मानवता की बहार
आगे बढ़कर
करुणा से भर
रच लो रक्षा के कुछ उपाय

बहुजन-हिताय,
बहुजन-सुखाय,
हम सागर यदि न उलीच सकें
आंखों की दो बूंदें हर लें,
हम पर्वत उठा सकें न अगर
बोझे दो सिर के कम कर दें,
अर्पित जीवन
अर्पित जन-धन
अर्पित होवे मन वचन-काय,
बहुजन-हिताय
बहुजन-सुखाय

[अब वह मण्डली बिलकुल निकट आ चुकी—इधर आसमान में लाली-ही-लाली है, अन्धकार धीरे-धीरे दूर हो चुका है—उदित होनेवाले सूरज की प्रभा के कारण या सामने आनेवाली कलकण्ठियों की शान्त सुखमा के कारण ?—अब हम स्पष्ट पहचान सकते हैं कि ये कौन हैं सब-के-सब भिक्षुणियां हैं—टुकड़े-टुकड़े जोड़कर बनाए पीले वस्त्र से, गर्दन से पैर तक इनके अंग ढके हैं, जिनके बाल कटा डाले गए हैं, वैसे सिरों पर पीले रंग के ही छोटे-छोटे कपड़े, रूमाल की तरह, सिर के पीछे की ओर बंधे हैं—काले रंग के भिक्षा-पात्र हाथों में—

अगली पंक्ति में ये तीन भिक्षुणियां कौन है ? जरा गौर से देखिए—बीच में देवी पुष्पगन्धा—उसकी दाहिनी ओर अम्बपाली--बाईं ओर मधूलिका—हां, मधूलिका ही !—भिन्न अवस्थाएं, भिन्न प्रकृतियां सिमटकर एक ही चली हैं—'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय' के एक पथ पर, एक उद्देश्य पर।

सूरज की किरणें फूटीं—पीले वस्त्रों के बीच अम्बपाली के शान्त मुखमण्डल पर वे जा पड़ीं, नृत्य कर उठीं— फिर प्रतिफलित हुईं—अम्बपाली का मुखमण्डल सूर्यमण्डल-सा दिप रहा है—हां, साक्षात् सूर्य-मण्डल-सा !—भिक्षुणियां गाए जा रही हैं—]

बहुजन-हिताय,
बहुजन-सुखाय,
हम सागर यदि न उलीच सकें,
आंखों की दो बूंदें हर लें
हम पर्वत उठा सकें न मगर,
बोझे दो सिर कम कर दें,
अर्पित जीवन
अर्पित जन-धन
अर्पित होवे मन-वचन-काय,
बहुजन-हिताय
बहुजन-सुखाय

□

मुद्रक : हरिकृष्ण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32